टालसटाय की आत्मकहानी

अर्थात्

महर्षि टालसटाय की संसार-प्रसिद्ध पुस्तक

'माई कन्फैशन' का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक—

उमराव सिंह कारुणिक बी० ए०,

रचयिता "कार्नेगी" इत्यादि।

प्रकाशक—

चौधरी शिवनाथ सिंह शाण्डिल्य

ज्ञानप्रकाश मन्दिर,

पो० माछरा, जि० मेरठ।

[पहिला संस्करण] सन् १९२२ ई० [मूल्य ॥=) आ०

रघुनाथ प्रसाद गार्ग्य के प्रबन्ध से साहित्य मुद्रणालय, मेरठ में मुद्रित।

मुद्रक—
साहित्य मुद्रणालय
मेरठ.

प्रकाशक
चौधरी शिवनाथ सिंह शाण्डिल्य
ज्ञानप्रकाश मन्दिर,
पो० माछरा, मेरठ.

ज्ञान-प्रकाश ग्रन्थमाला की दूसरी पुस्तक

टाल्सटाय की आत्म-कहानी।

ज्ञानप्रकाश मन्दिर, पो० माछरा,

मेरठ से

निम्न लिखित कार्यालयों द्वारा

प्रकाशित पुस्तकें भी

≠) रु० कमीशन पर

मिल सकती हैं।

१ हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई
२ शारदा पुस्तकमाला, जब्बलपुर।
३ आर० एल० बर्मन, कलकत्ता।
४ मध्यभारत हिंदी सा० समिति, इन्दौर
५ हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता।
६ प्रताप प्रेस, कानपुर।
८ ज्ञान-मण्डल, काशी।
९ ग्रन्थ-माला कार्यालय, बांकीपुर।
१०. गंगा पुस्तक-माला, लखनऊ।

विषय सूची ।

इस पुस्तक के पढ़ने से प्रतीत होता है कि सन्देह-सागर में डुबकी लगाती हुई तथा संसार की वास्तविकता से अनभिज्ञ चारों ओर अन्धकार अनुभव करती हुई किसी महान् आत्मा की क्या दशा होती है।

टालसटाय ने अपने ही अविश्वास के इतिहास से पुस्तक को आरम्भ किया है। अपनी अश्रद्धा का वर्णन करके टालसटाय ने एक ही पैरे मे इस युग के जन साधारण की अश्रद्धा का चित्र खैंच दिया है। टालसटाय ने लिखा है:—

मुझे याद है कि जब मैं बारह वर्ष का था, एक दिन एक लड़का जिसे मरे हुवे बहुत दिन हुवे—रविवार के दिन मेरे पास आया और कहने लगा कि स्कूल में एक नूतन अन्वेषण हुवा है और वह यह है कि ईश्वर कोई चीज़ नहीं है। जो कुछ हमको उसके विषय में सिखाया गया है लोगों की घड़न्त है। यह बात सन् १८३८ ई० की है। मुझे याद है कि जब लड़के ने यह बात कही तो सब को मनोरञ्जक मालूम हुई। मुझे यह भी याद है कि जब मेरा बड़ा भाई डिमैट्री प्रतिदिन गिरजा में जाया करता था तथा व्रत रक्खा करता था तो सदैव हम सब उस पर हंसा करते थे। हमने हंसी मे उसे नूह (Noah) का उपनाम दे दिया था।"

इस के पश्चात् टालसटाय ने दिखाया है कि मेरी श्रेणी के मनुष्य अपने धर्म की आज्ञाओं का बिलकुल भी पालन नहीं करते प्रत्युत विपरीत चलते हैं। उन का धर्म केवल दिखावे का है। वास्तविक जीवन पर उस का बिलकुल प्रभाव नहीं है, उस ने लिखा है:—

"बहुधा देखा गया है कि प्रत्यक्ष में पुरानी बातों पर विश्वास रखने वाले मनुष्य अल्पज्ञ, कठोर प्रकृति तथा मक्कार होते हैं।

इस के विरुद्ध नास्तिक लोगों मे प्रतिभा, ईमानदारी, पवित्रता तथा सच्चरित्रता बहुतायत से मिलती है।"

पन्द्रह वर्ष ही की आयु से टाल्सटाय ने दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ कर दिया था। इस कारण टाल्सटाय अनुभव करता था कि धर्म पर से उस का विश्वास उठता जा रहा है। उस ने प्रार्थना करना, गिरजा जाना तथा व्रत रखना छोड़ दिया और सत्य की खोज मे लग गया। किन्तु सत्य की खोज में उस का कोई साथी न था। उस ने लिखा है:—"जब मैंने दूसरों से अपने नेक चलने की हार्दिक इच्छा प्रगट की तो लोगों ने मेरी हंसी उड़ाई और मुझ को घृणा की दृष्टि से देखा। किन्तु जब मैंने पाशविक वृत्तियां प्रगट कीं तो लोगो ने मेरी प्रशंसा की। मैंने सांसारिक वासनाओ, विषय, भोग, घमण्ड, क्रोध, बदला आदि का बड़ा मान देखा।"

इस के बाद टाल्सटाय ने अपनी श्रेणी के मनुष्यों के समान विषय वासना आदि अनेक प्रकार के पाप कर्मों मे फंस जाने पर अपने आप को धिक्कारा है।

टाल्सटाय ने लिखा है कि मैंने केवल नाम तथा धन के लोभ से ग्रन्थ-रचना आरम्भ की। यहां पर टाल्सटाय ने अपनी रचनाओं की उचित से कड़ी आलोचना की है। टाल्सटाय के आरम्भिक ग्रन्थों से भी दूसरों के साथ सहानुभूति का भाव टपकता है। अपने समकालीन लेखकों की आलोचना मे भी टाल्सटाय उचित से अधिक तीव्र हो गया है।

टाल्सटाय ने लिखा है कि पेरिस में एक मनुष्य को फांसी दिया जाता देखकर मेरा विश्वास इस बात पर से उठ गया कि 'हम लोग उन्नति की ओर जा रहेहैं'। उसके भाई की असामयिक मृत्यु का भी उस के चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा

इस के बाद टाल्सटाय ने अपने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य की आलोचना की है । उस में लिखा है कि मैं नहीं जानता था कि लड़कों को क्या पढ़ाऊं ? इस कारण उस को उन ही की रुचि पर छोड़ दिया । किन्तु परिणाम सन्तोषप्रद न निकला ।

कुछ ही दिनों बाद टाल्सटाय ने विवाह कर लिया और कुछ काल के लिये जीवन-समस्या को भूल गया । किन्तु दस वर्ष के बाद जीवन-समस्या फिर विकल करने लगी । 'क्यों' तथा "किस लिये" सदैव सामने रहने लगे ।

इस समय टाल्सटाय ने विशेषतया शापनहार (Schopen hauer) सुलैमान तथा ईसाई धर्म सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन किया । सुलेमान (Solomon) कह गया है कि 'जीवन व्यर्थ है ।' टाल्सटाय भी उसी परिणाम पर पहुंचा जिस पर शापनहार तथा सुलैमान पहुंचे थे अर्थात् जीवन बुराई है जिस में मौत के ख्याल ने ज़हर घोल दिया है ।

रात दिन टाल्सटाय विकल रहने लगा । उस ने इस बात का अध्ययन करना आरम्भ किया कि अन्य मनुष्य इस विकलता से किस प्रकार बचते हैं । उस ने देखा कि युवक अपनी ,अज्ञानता अर्थात् जीवन की निरर्थकता से अनभिज्ञता के कारण इस विकलता से बचे हुये हैं । किन्तु टाल्सटाय के लिये ऐसा करना असम्भव था, उस के हृदय में तो सत्य की खोज आसन जमा चुकी थी ।

दूसरी प्रकार के लोग वे थे जो कहते थे—'अबतो चैन से गुज़रती है, आक़बत की ख़बर ख़ुदा जाने' । टाल्सटाय की श्रेणी के मनुष्य अधिकतर इस ही विचार के थे । इन लोगों के पास स्वयं आनन्द उड़ाने के लिये यथेष्ट सामग्री थी । स्वार्थान्धता के कारण ये लोग नहीं देख सकते थे कि "अधिकतर मनुष्य इस

प्रकार की सामग्री से वञ्चित है। ऐसे मनुष्यों के पथ पर चलना भी टालसटाय के लिये असम्भव था क्योंकि उसकी 'स्वार्थान्धता नष्ट होचुकी थी।

शेष ऐसे मनुष्य थे जो आत्म-हत्या करके सब झंझटों से छुटकारा पाते थे। टालसटाय ने इस उपाय को सब से अच्छा समझा था। किन्तु ऐसा करने का साहस नहीं पड़ता था।

इस कारण किसी सन्तोषप्रद परिणाम पर न पहुंचने के कारण टालसटाय ने फिर मेहनत मज़दूरी करने वाले मनुष्यों की ओर ध्यान दिया और मालूम किया कि इन लोगो ने जीवन-समस्या को भली प्रकार हल कर लिया है। ये लोग उपरोक्त तीनों प्रकार के मनुष्यों से भिन्न थे। ये लोग जीवन-समस्या से अनभिज्ञ नहीं कहे जा सकते थे। ये लोग कभी आपत्ति, रोग आदि की शिकायत नहीं करते थे। सदैव यही कहते थे कि जो कुछ होरहा है हमारी भलाई के लिये हो रहा है। यद्यपि ये लोग सुलैमान या हमारे समान सम्पत्तिशाली नहीं थे तो भी कभी धनहीनता के कारण चिन्तित नहीं रहते थे। ये लोग सुखवादी (Epicurean) भी नहीं कहे जासकते थे क्योंकि पसीना बहा कर पेट पालते थे। ये लोग केवल अपने आप ही आत्म-हत्या करनेसे नहीं बचते थे, वरन् आत्म-हत्या को महा पाप समझते थे।

तो फिर इन लोगों की कृतकार्यता तथा शान्ति का रहस्य क्या था? टालसटाय ने उत्तर दिया—"उनका धर्म"। ऊंची ज़ात वालों के समान उनका धर्म भरी पुरी की तियल के समान केवल दिखाने ही के लिये नहीं था, वरन् वे अपने धर्म के आदेशों के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे।

इस विचार से टालसटाय ने मज़दूर लोगों के धर्म पर चलने का विचार करलिया। वह यूनानी चर्च की सब बातें मानने लगा। प्रात काल तथा सायंकाल के समय प्रार्थना करने लगा तथा व्रत

रखने लगा। इसके अतिरिक्त यूनानी धर्म की साधारण से साधारण बात मानने लगा। किन्तु यूनानी चर्च की बहुतसी बातें ऐसी थीं जो उसे ठीक नहीं मालूम पड़ती थीं। बहुत दिनों तक वह इसी असमञ्जस मे रहा कि मैं क्या करूं अर्थात् झूठ समझते हुये भी उन बातों को मानने लगूं या उन बातो के मानने से इन्कार करदूं।

कुछ दिन इस ही प्रकार बीते, किन्तु उसकी अन्तरात्मा सदैव एक मात्र सत्य पर दृढ़ रहने का आग्रह करती रही।

एक दिन टालस्टाय जब वेदी (Altar) के निकट पहुंचा तो पादरी ने कहा, "जो कुछ अब तुम खाओगे उस को असली खून और जिस्म समझना चाहिये।"

यह बात सुन कर टालसटाय के दिल में छुरी सी लगी और उसने ईसाई धर्म की पुस्तकों का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने का विचार कर लिया।

बाइबिल का अध्ययन करने से टालसटाय को पता चला कि सनातन धर्मी ईसाई मत(Orthodox Church) ईसा की शिक्षा के विपरीत चल रहा है और उस ने अपना सम्बन्ध सनातनधर्मी चर्च से तोड़ लिया।

कन्फैशन (Confession) के अन्त में टालसटाय ने लिखा है:—

निस्सन्देह ईसाई धर्म में सत्य और झूठ दोनों हैं। मुझ को मालूम करना चाहिये कि क्या बात सत्य है और क्या बात झूठ और फिर सत्य को झूठ से पृथक् करना चाहिये। किस बात को मैं सच समझता हूं किस को झूठ तथा मैं किस परिणाम पर पहुंचा हूं—ये सब बातें, मनुष्य जाति के लिये उपयोगी समझे जाने की दशा मे, फिर कभी पुस्तक रूप मे प्रकाशित की जायेगी।

जिस पुस्तक की ओर टालसटाय ने संकेत किया है वह पुस्तक सन् १८८४ ई० में, अर्थात् इस पुस्तक के पांच वर्ष बाद, 'What I believe' (मेरा विश्वास) के नाम से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में टालसटाय ने ईसाई धर्म पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है। यह पुस्तक भी बड़े महत्व की है, क्योंकि इस के पढ़ने से पता चलता है कि ईसा की शिक्षायें वास्तव में कैसी उच्च तथा उदार थीं और अब उस के मानने के दम भरने वालों ने किस प्रकार उन को भ्रष्ट कर दिया है। इसके अतिरिक्त टालसटाय के जीवन को भली भांति समझने के लिये भी इस पुस्तक का पढ़ना अत्यन्तावश्यक है।

यदि पाठकों ने इस पुस्तक को पसन्द किया तो शीघ्र ही 'What I believe' का अनुवाद भी 'मेरा विश्वास' के नाम से सेवा में उपस्थित करने का विचार है।

मेरठ
१–६–२२,

उमरावसिंह कारुणिक बी० ए०
सम्पादक 'ललिता'

टाल्सटाय का जीवन-चरित्र ।

I shall die like every one else, but, both for me and for all, my life and death will have a meaning.

—Tolstoy.

उन्नीसवीं शताब्दी का रूस का सब से बड़ा तत्ववेत्ता तथा लेखक टाल्सटाय आधुनिक सभ्यता का सब से बड़ा समालोचक हुवा है । आधुनिक सभ्यता से, जिस रूप में वह है, कौन सन्तुष्ट है ? हम सब उच्चतर सभ्यता चाहते हैं । जिस बात को हम कहते हुवे डरते हैं या जिस बात को कहने मे असमर्थ हैं, उस ही बात को टाल्सटाय ने बहुत योग्यता पूर्वक तथा स्पष्ट रूप से कहा है । इस कारण टाल्सटाय का जीवन तथा उस के ग्रन्थ विशेष रूप से मनन करने योग्य हैं ।

टाल्सटाय का जन्म रूस देश में टूला के निकट यसनया पोलयाना (Yasnaya Polyana) नामक ग्राम में २८ अगस्त सन् १८२८ ई० को हुआ था । उस के पिता का नाम काउन्ट निकोलस टाल्सटाय तथा उस की माता का नाम प्रिन्सेज़ मेरी वालकन्सकी था । माता पिता दोनों ही उच्च घराने के थे । टाल्सटाय वंश ने रूस के इतिहास मे अच्छा भाग लिया था । पहिले काउन्ट—पीटर टाल्सटाय—का महान पीटर (Peter the Great) के पुत्र ज़ारविच एलेक्सिस (Zsarvitch Alexis) की हत्या में हाथ था । वह गुप्त सेवा (Secret Service) का प्रधान नियुक्त कर दिया गया था इस के बाद महारानी

कर दिया। इस में भी अकृतकार्य रहा। अन्त में असंतुष्ट होकर टाल्सटाय ने विश्व विद्यालय को छोड़ दिया और कृषकों में कार्य करने के विचार से यासयाना में चला आया।

थोड़े ही दिनों बाद टाल्सटाय यासयाना से सेन्ट पीटर्सबर्ग (*आधुनिक पैट्रोग्राड) चला गया और यहां भोग विलास में पड़ गया। सदाचार की दृष्टि से टाल्सटाय के जीवन का यह समय बहुत ही बुरी तरह से बीता। स्वयं टाल्सटाय ने अपनी डायरी में लिखा है, "यद्यपि मेरा चरित्र बिल्कुल दूषित नहीं हुवा है किन्तु पशुओं के समान जीवन व्यतीत कर रहा हूं। मेरा अध्ययन क़रीब क़रीब छूट गया है और आत्मिक दृष्टि से मैं बहुत हीनावस्था को पहुंच गया हूं।"

अपनी धार्मिक पुस्तक "My Confession" में भी टाल्सटाय ने अपने जीवन के इस समय के विषय मे लिखा है:—

"जब मैं अपने जीवन के उस समय पर दृष्टि डालता हूं तो मुझे बड़ा कष्ट तथा अत्यन्त घृणा होती है। मैंने युद्धों में नर-हत्या की। दूसरों की जान लेने के विचार से डूएल्स (Duels) लड़े। जुवा खेला। कृषकों के कठिन परिश्रम से उपार्जित धन को व्यर्थ कामों में लगाया। दुराचारिणी स्त्रियों से संबन्ध रक्खा। आदमियों को धोखा दिया। मिथ्या-भाषण, लूट मार, मद्य पान, निर्दयता, नर-हत्या आदि सब ही कुछ किया। शायद ही संसार का कोई ऐसा बुरा काम होगा जो मुझ से बचा होगा। इस पर भी मैं दूसरे मनुष्यों की दृष्टि मे भद्र पुरुष समझा जाता था। दस वर्ष तक मेरा जीवन इसी प्रकार व्यतीत हुवा"।

"इसी बीच में टाल्सटाय रूसी तोपख़ाने के साथ काकेशश चला गया। कोई तीन वर्ष वहां रह कर सन् १८५१ ई० में छुट्टी पर लौटा ... के स्वस्थ तथा मनोरञ्जक जीवन स ... क

मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार का स्वास्थ्य ठीक हुवा तथा विचार शक्ति का विकाश हुवा। सन् १८५२ ई० में उस ने अपना पहिला उपन्यास 'बचपन' (Childhood) प्रकाशित कराया। सब समालोचकों ने इस उपन्यास की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। काकेशश के जीवन से टालसटाय ने 'कज़ाक्स' (The Cossaks) तथा 'इन्वेडर्स' (The Invaders) नामक दो अतीव मनोरञ्जक ग्रन्थों की सामग्री भी एकत्रित की।

सन् १८५३ ई० में टालसटाय काकेशश छोड़ कर सवस्तापूल (Sebestopol) चला गया, क्योंकि उसके सम्बन्धियों ने उसको प्रधान सेनापति प्रिन्स गर्चाकफ़ (Commander-in-chief Prince Gorchakoff) के स्टाफ़ में जगह दिला दी थी। यहां पर कई बार टालसटाय की जान बाल २ बची, क्योंकि वह भयङ्कर से भयंकर कामों में पड़ने के लिये उतारू होजाता था।

सन् १८५४ ई० में टालसटाय ने अपनी 'Tales from Sebastapool' नामक पुस्तक छपवाई। इस पुस्तक ने ज़ार का भी ध्यान टालसटाय की ओर आकर्षित किया और उसकी ख्याति खूब बढ़ाई। इस पुस्तक की सामग्री सवस्तापूल ही से एकत्रित की गई थी। इसके अतिरिक्त सवस्तापूल से टालसटाय को और भी बहुत लाभ पहुंचा। यहीं पर उसने सबसे पहिले मनुष्यों की वीरता तथा उनके दुःखान्त जीवन का दृश्य देखा। उसने देखा कि २२ हज़ार मनुष्यों ने अपने आप को तोप बन्दूकों की आहुति देदिया है और इतने ही मनुष्य अस्पतालों में 'आप्रेशन टेबिलों' (Operating tables) पर बिना क्लोराफ़ार्म सूंघे—केवल सहन शीलता ही से नहीं वरन् प्रसन्नता पूर्वक—सैकड़ों प्रकार के कष्ट सह रहे हैं। क्यों? किसी व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं प्रत्युत एक आदर्श देश भक्ति के आदर्श के लिये।

इन सब बातों ने टाल्सटाय की प्रकृति को बहुत उदार बना दिया तथा उस को जन साधारण के जीवन की महत्ता समझा दी।

सवस्तापूल लिये जाने के कुछ ही दिनों बाद टाल्सटाय सैनिक वैभव के एक मात्र भाव से तंग आकर पीटर्सबर्ग चला आया। यहां बड़े २ लेखकों ने उस का स्वागत किया। टर्जनिफ़ (Turgenef) तथा कवि फैट (Fet) उस के मित्र हो गये। किन्तु टाल्सटाय को लेखकों की सोसाइटी पसन्द न आई और शीघ्र ही इन लोगों मे आना जाना छोड़ दिया।

सन् १८५७ ई० के जनवरी मास में टाल्सटाय ने यूरप की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। वह पैरिस भी गया। पैरिस में उस ने एक आदमी को फांसी दिये जाते देखा। इस हृदय विदारक दृश्य से टाल्सटाय के कोमल हृदय पर बड़ी चोट लगी और उस दिन से वह प्राण दण्ड की सज़ा का कट्टर विरोधी हो गया।

टाल्सटाय स्विट्ज़रलैण्ड, जिनीवा तथा लूसेन भी गया। लूसेन में अङ्गरेज़ यात्रियों के गर्व पूर्ण व्यवहार को देखकर उसके चित्त को बहुत दुःख पहुंचा। इस बात को टाल्सटाय ने अपनी 'एल्बर्ट' नामक गल्प मे दिखाया है।

२० सितम्बर सन् १८६० ई० को टाल्सटाय के बड़े भाई का तपैदिक़ के कारण परलोकवास हो गया। इस घटना से टाल्सटाय के हृत्पटल पर मानुषिक जीवन के दुःखद परिणाम का चित्र खिंच गया। इस असामयिक मृत्यु का टाल्सटाय पर बड़ा प्रभाव पड़ा, क्योंकि टाल्सटाय को जितना अगाध प्रेम अपने बड़े भाई से था उतना किसी से न था।

इस के बाद टाल्सटाय ने आरम्भिक शिक्षा की समस्या का फ्रान्स, जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड मे अध्ययन किया।

सन् १८६१ ई० के फ़रवरी मास में रूस में किसान गुलाम (serf) आज़ाद कर दिये गये और रूस के इतिहास में एक नूतन युग का प्रादुर्भाव हुवा। टाल्सटाय ने तत्काल किसानों के लिये स्कूल खोल दिये। टाल्सटाय ने अपने स्कूलों का नूतन प्रणाली से संगठन किया था। उस ने छात्रों को बड़ी स्वाधीनता दी था। किन्तु यह स्वाधीनता अफ़सरों को न भाई और उन की टाल्सटाय के स्कूलों पर वक्र दृष्टि पड़ने लगी। इस कारण उसको अपने स्कूल शीघ्र ही बन्द करने पड़े।

सरदारों तथा किसानों में भूमि बांटने में भी बहुत से झगड़े उठे*। इन झगड़ों में टाल्सटाय सदैव किसानों की ओर रहा करता था, इस कारण अधिकांश सरदार टाल्सटाय से जलने लगे। किन्तु टाल्सटाय कब किसी की नाराज़ी की परवा करता था। वह सदैव यथा शक्ति ग़रीबों के पक्ष का समर्थन करता रहा।

सन् १८६२ ई० मे ३४ वर्ष की अवस्था में टाल्सटाय ने सोफ़िया बेहर्स (Sophia Behrs) से विवाह कर लिया। इसके बाद टाल्सटाय के कुछ दिन बड़े आनन्द से कटे। सन् १८६४-६ ई० में टाल्सटाय ने 'युद्ध तथा शान्ति' (War and Peace) नामक उपन्यास लिखा। सन् १८७६ ई० में 'आना करैनीना' (Anna Karenina) नामक दूसरा उपन्यास लिखा, इन दोनों उपन्यासों ने टाल्सटाय के रचना-कौशल की सारे यारुप में धूम मचा दी। साहित्य सम्बन्धी कार्य में टाल्सटाय को अपनी स्त्री से भी बड़ी सहायता मिलती थी। उस की स्त्री ही प्रेस में भेजने के

---

* किसानों को इतनी भी भूमि नहीं दी जाती थी जिस से वे भर पेट भोजन पा सकें तथा आपत्ति काल के लिये कुछ बचा सकें।

लिये उस के हस्त लिखित ग्रन्थों की 'फेयर कापी' किया करती थी। यह कार्य उसी के वस का भी था क्योंकि टाल्सटाय का ख़त बहुत ख़राब था और वह कांटा छांटी बहुत किया करता था। उस की स्त्री के एक सम्बन्धी का कहना है कि 'युद्ध तथा शान्ति' (War and Peace) नामक ग्रन्थ की हस्त लिखित प्रति को उस की स्त्री को सात बार नक़ल करनी पड़ी थी। अस्तु।

इस प्रकार टाल्सटाय की आयु के पचास वर्ष व्यतीत होगये। इस समय टाल्सटाय के जीवन ने यकायक पलटा खाया। यद्यपि सारा सभ्य संसार उस के क़लम का लोहा मानता था, उस के पास माकूल जायदाद थी, तथा उस की स्त्री उस से प्रेम करती थी, किन्तु फिर भी वह जीवन से असन्तुष्ट हो गया। उस को जीवन निस्सार प्रतीत होने लगा और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दीखने लगा।

वास्तविक बात यह थी कि युवावस्था से ही टाल्सटाय दार्शनिक तथा धार्मिक समस्याओं पर विचार किया करता था। बहुत से सन्देह रह जाने के कारण वह उस समय जीवन-समस्या को हल नहीं कर सका था किन्तु अधिकांश मनुष्यों के समान उस समय सांसारिक सुखों के भोग में लग कर जीवन-समस्या को भुला दिया था। किन्तु ऐसे मनुष्य, जिनकी प्रकृति वास्तव में चिन्तनशील है, किसी विकल करने वाले सन्देह को सदैव के लिये नहीं भुला सकते। एक समय आता है कि जब पहिले सब सन्देह सन्मुख उठ कर विकल करने लगते हैं और फिर किसी प्रकार टाले नहीं टलते। यही दशा टाल्सटाय की भी हुई। अब रात दिन जीवन-समस्या सामने रहने लगी। कई बार तो टाल्सटाय इतना विकल हुवा कि आत्म-हत्या तक करने का विचार करने लगा। टाल्सटाय ने अपनी इस समय की दशा का

'My Confession' (माई कन्फैशन) नामक पुस्तक में बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। टाल्सटाय का जीवन समझने के लिये इस पुस्तक का पढ़ना अत्यन्तावश्यक है।

अब टाल्सटाय ने फिर नये सिरे से दार्शनिक तथा धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करना आरम्भ किया और इस परिणाम पर पहुंचा कि मनुष्य को 'गास्पल' (Gospel) के आदेशों-विशेषतया पहाड़ के धर्मोपदेश (Sermon on the Mount)—के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिये। जीवन के लिये परिश्रम तथा प्रेम अत्यन्तावश्यक है। हम को अपना स्वभाव सीधा सादा रखना चाहिये तथा परिश्रमी और दयालु होना चाहिये। जितनी नेकी हमारे साथ दूसरे करते हैं, हम को उस से अधिक नेकी उन के साथ करनी चाहिये। हम जितना लाभ समाज से उठाते हैं उस से अधिक लाभ समाज को पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिये। सेवा में आनन्द समझना चाहिये। हम को प्रसन्न रहना चाहिये तथा मृत्यु से नहीं डरना चाहिये। यदि हम अपने अन्दर से अहम् भाव अर्थात् खुदी को मिटा देंगे तो हमको अपने बिल्कुल लुप्त होने अर्थात् मरने का भी डर नहीं रहेगा।"

इसके पश्चात् टाल्सटाय ने अपना सारा जीवन चरित्र-सुधार तथा धार्मिक विषयों पर उपदेश देने में लगा दिया। वह बहुत ही साधारण रीति से जीवन व्यतीत करता था। अत्यन्त साधारण निरामिष भोजन खाता था। किसानों के से कपड़े पहनता था। अपने कमरे में झाड़ू भी स्वयं ही लगा लेता था। इतना साधारण जीवन व्यतीत करने के लिये भी मेहनत मज़दूरी का काम किया करता था। गरमियों में खेत में काम किया करता था या लकड़ियां काटा करता था। जाड़ों में जूते बनाया करता था। मेहनत मज़दूरी करने तथा शराब आदि मादक पदार्थों का सेवन न करने के कारण टाल्सटाय का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था।

टाल्सटाय चाहता था कि अपनी सब धन सम्पत्ति जन साधारण को दे डाले, किन्तु अपनी स्त्री के कारण ऐसा न कर सका। टाल्सटाय की स्त्री विदुषी महिला थी। वह उस की जायदाद का प्रबन्ध करने में सहायता देती थी और उसके साहित्यिक कार्य को समझती थी तथा अपने पति की ख्याति में अपनी ख्याति समझती थी किन्तु टाल्सटाय के उच्च नैतिक आदर्श उस की स्त्री की पहुंच से बाहर थे। रुपये का लालच वह नहीं छोड़ सकती थी और सदैव इसी चिन्ता में रहती था कि कहीं मेरा पति कोई ऐसा काम न कर बैठे जिस से मेरे लड़के धन-हीन रह जाएं। ऐसा सुना जाता है कि एक बार तो उस की स्त्री ने सरकार के पास इस विषय का प्रार्थना पत्र भेज दिया था कि मेरे पति को पागल तथा रियासत का प्रबन्ध करने में असमर्थ घोषित कर दिया जाय। हाय! स्वार्थ भी कभी २ कैसे २ नीच काम करा डालता है!

ज़ार के निरंकुश शासन के कारण अपने प्यारे देश की अधो-गति को देख कर टाल्सटाय सदैव दुःखी रहा करता था। सन् १८८० ई० में रूस देश में मर्दुमशुमारी हुई। टाल्सटाय भी इस कार्य में सहायता देने के लिये 'वालन्टियर' बन गये। इस मर्दुमशुमारी का पूर्ण वृत्तान्त टाल्सटाय ने अपनी पुस्तक 'What to Do' (क्या करना चाहिये) में लिखा है। इस पुस्तक में उसने दिखाया है कि किस प्रकार कतिपय मनुष्य भोग विलास में डूबे रहते हैं और दूसरी ओर उन के भाई भूख के मारे छटपटाते रहते हैं। ईमानदार मज़दूर को इतना भी वेतन नहीं दिया जाता कि वह अपना पेट पाल सके। क्यों? इस ही लिये कि उस के स्वामी के भोग विलास में किसी प्रकार की त्रुटि न आये।

अन्त में शहर के कृत्रिम जीवन से असन्तुष्ट हो कर टाल्सटाय गांव चला गया और जन साधारण के लिये पुस्तिकायें लिखने लगा। इन पुस्तिकाओं को जन साधारण ने बहुत पसन्द किया। प्रत्येक पुस्तिका की एक आवृत्ति में २४ हज़ार कापियें छपती थीं और बहुत सी पुस्तकें एक ही वर्ष के अन्दर पांच २ बार प्रकाशित होती थीं। चार वर्ष के अन्दर ही अन्दर टाल्सटाय की पुस्तिकाओं की सवा करोड़ के लगभग प्रतियां बिक गईं !

सन् १८६१-२ में रूस में बड़ा भारी अकाल पड़ा। टाल्सटाय ने यथाशक्ति अकाल पीड़ितों के कष्ट कम करने का प्रयत्न किया।

मार्च १९०१ ई० में रूसी चर्च ने, टाल्सटाय द्वारा चर्च पर किये गये स्पष्ट निर्भीक तथा योग्यता पूर्ण आक्षेपों का न्याय-संगत उत्तर देने में विवश हो कर तथा उस के दिन प्रति दिन बढ़ते हुवे प्रभाव से भयभीत हो कर, उस को चर्च से निकाल दिया। किन्तु चर्च से निकालने का प्रभाव उल्टा ही हुआ। टाल्सटाय में रूसी लोगों की श्रद्धा और भी बढ़ गई। वे उस का और भी अधिक मान करने लगे तथा उसको रूस का सब से बड़ा धर्मोपदेशक समझने लगे। रूस से बाहर भी टाल्सटाय का प्रभाव दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। वह बराबर ग्रन्थ-रचना के काम में लगा रहा और मरने के समय भी कई अप्रकाशित ग्रन्थों की हस्त-लिपियां छोड़ गया।

टाल्सटाय के अन्तिम दिन शान्ति से नहीं बीते। यद्यपि बहुत दिनों से टाल्सटाय ने राजनैतिक विषयों में भाग लेना छोड़ रक्खा था, किन्तु राजनैतिक क्रान्ति (Revolution) को दबाने में सरकार ने जिस कठोरता तथा क्रूरता से काम लिया, उसे देख उससे चुप न बैठा गया। उसने यूरुप के सब बड़े २ समाचार पत्रों में एक बड़ा ही हृदयभेदी पत्र छपवाया जिसमें ज़ार के अत्याचारों का हृदय-विदारक वर्णन था। इस पत्र के आरम्भिक शब्द थे—"अब मैं और चुप नहीं रह सकता"।

टाल्सटाय अपनी स्त्री तथा अपने परिवार वालों की फ़ज़ूल ख़र्ची से भी तंग रहता था। वह उनको छोड़ना चाहता था, किन्तु ऐसा करना उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध था। उसका कहना था कि जान बूझ कर किसी को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिये। किन्तु अन्त में तंग आकर अपने परिवार से अलग होने का विचार कर ही लिया। एक दिन शरद् ऋतु में रात्रि के समय जब कि बर्फ़ पड़ रहा था, अपने एक विश्वासपात्र मित्र के साथ घर से भाग निकला। रूस की शरद् ऋतु की रात का जाड़ा टाल्सटाय का बुढ़ापे का शरीर सहन नहीं कर सका। थोड़ी ही दूर बाद एक छोटे से स्टेशन पर ठहरना पड़ा। इस ही स्टेशन के स्टेशन मास्टर के घर २० नवम्बर सन् १९१० ई० को टाल्सटाय ने इस संसार से सदैव के लिये मुंह मोड़ लिया।

उसका शव उस ही की रियासत में गाढ़ा गया। पादरी लोगों ने अन्तिम संस्कार कराने में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया। जनाज़े की नमाज़ विशेषतया किसानों ने पढ़ी थी जो टाल्सटाय को पिता के समान प्यार करते थे। रूसी सर्कार, जो टाल्सटाय पर हाथ उठाने का साहस नहीं करती थी, उसके अनुगामियों को अनेक प्रकार के कष्ट देने लगी। हज़ारों मनुष्यों को जो उसके जनाज़े को देखने जाना चाहते थे, जाने से रोक दिया। उसके बहुत से ग्रन्थों को राज-द्रोही बता कर उनका प्रचार बन्द कर दिया। किन्तु—

ज़ुल्म की टहनी कभी फलती नहीं।
नाव काग़ज़ की सदा चलती नहीं॥

कौनसी सरकार अत्याचार तथा पाशविक शक्ति के बल पर अधिक काल तक चल सकती है? शहीदों का ख़ून कब तक रंग न लाता। थोड़े ही काल पश्चात् रूसी सर्कार को भी अपने किये का फल भोगना पड़ा और अपने सामने किसी को कुछ न समझने वाले ज़ार का आज पता भी नहीं है।

टाल्सटाय के विचार।

टाल्सटाय, एक प्रतिभाशाली लेखक तथा दार्शनिक ही नहीं, महापुरुष भी था। उसमें बहुत से गुण थे तथा उसके विचार बड़े उदार थे।

उसका कहना था कि मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा के अनुसार कार्य करना चाहिये। किसी बात को केवल इसी लिये—कि वह सनातन काल से होती चली आती है—नहीं करना चाहिये। रूसी लोग मुद्दतों से ज़ार को ईश्वर का अंश कर उसके आदेशों का पालन करना अपना धर्म समझते आये थे। किन्तु टाल्सटाय ने इस बात का बड़े ज़ोर शोर से विरोध किया। इब्सन (Ibsen) के समान उसका कहना था कि यदि मनुष्य को इस बात का दृढ़ विश्वास होजाय कि मैं ही सत्य पर हूं तो अवसर पड़ने पर सारे संसार के विरुद्ध खड़ा होने में भी उसे नहीं हिचकना चाहिये।

टाल्सटाय 'सामाजिक न्याय' (Social Justice) का बड़ा पक्षपाती था। यद्यपि उसका जन्म एक उच्च वंश में हुआ था। किन्तु वह उच्च वंश के अभिमान को मिथ्या अभिमान समझता था। उसका कहना था कि मनुष्य मात्र को उन्नति करने के लिये बराबर अवसर मिलना चाहिये।

रस्किन और कार्लायल के समान टाल्सटाय भी युद्ध का घोर विरोधी था।

आधुनिक क़ानून-शास्त्र भी टाल्सटाय को पसन्द नहीं था। मृत्यु-दण्ड के तो वह बहुत ही ख़िलाफ़ था। उसका कहना था कि आज कल के क़ानून में विशेष त्रुटि यह है कि अमीर लोग तो बच जाते हैं, किन्तु ग़रीब लोग नाग़हानी फंस जाते हैं। इसके अतिरिक्त आज कल जिस प्रकार से दण्ड दिया

जाता है उससे अपराधी सुधरने के स्थान मे बेहया तथा निष्ठुर होजाते हैं। टाल्सटाय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Resurrection' मे बन्दीजीवन के कष्ट तथा वेदनाओं का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है।

टाल्सटाय साधारण जीवन पसन्द करता था। ऊपरी तड़क भड़क और बाहरी टीप टाप उसे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी। वह प्राचीन आर्यों के 'साधारण जीवन तथा उच्च विचार' के आदर्श को मानने वाला था।

टाल्सटाय का धर्म।

टाल्सटाय के अनुसार सब मनुष्यों के अन्दर ईश्वर की आत्मा (Spirit of God) विद्यमान है। हमारे लिये सबसे आवश्यक कार्य यह कि हम उस ईश्वरात्मा को जागृत करने का प्रयत्न करें। हमारा सबसे बड़ा धर्म (Duty) यह है कि सब मनुष्यों से ऊँच नीच का विचार छोड़कर, प्रम करें और भ्रातृभाव फैलाने का प्रयत्न करें। सत्रहवीं शताब्दि के 'प्यौरिटेनों' (Puritans) के समान टाल्सटाय बाइबिल को अपना पथ-प्रदर्शक मानता था। किन्तु उसका विश्वास 'ओल्ड टैस्टैमैन्ट' (Old Testament) पर नहीं था। वह केवल 'नूतन टैस्टैमैन्ट' ही को प्रमाणिक समझता था।

ग्रन्थ-रचना।

टाल्सटाय ने बहुत सी—कोई पचास के लगभग—पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें बड़ीही महत्वपूर्ण हैं। इस छोटे से लेख में टाल्सटाय की पुस्तकों पर आलोचनात्मक दृष्टि नहीं डाली जा सकती। अतएव केवल नामावली देकर ही सन्तोष किया जाता है।

* इस चिन्ह वाली पुस्तकें विशेष महत्वपूर्ण है।

टाल्सटाय के ग्रन्थ।

1852. *Childhood.**
1853. *The Raid.*
1854. *Boyhood.**
1855. *Memoirs of a Billiard Marker.*
The Wood Felling.
1856 *Sevastopol**
The Snow Storm. Two Hussars. A Landed Proprietor.
1857. *Youth.** *Lucerne.*
1858. *Albert.*
1859. *Three Deaths.** *Family Happiness**
1863 *The Cossacks** *Polikoushka.*
1869 *War and Peace**
1872. *A Prisoner in the Caucasus.*
God Sees the Truth
1874. *On Popular Education.*
1877. *Anna Karenina**
1878 *First Recollections.*
1879 *My Confession.**
1880. *Criticism of Dogmatic Theology.*
1881. *What Men Live By.*
Church and State.
1882. *The Four Gospels Harmonised and Translated. On the Census.*
1884. *What I Believe.**
The Decembrists.

1885. *Where Love Is God Is.**
*Two Old Men.**
1886. *What Must We Do ?*
Ivan the Fool.
*Death of Ivan Ilyitch.**
How much Land Does a Man Need ?
*Ilyas The Three Hermits. The Candle.**
*The Power of Darkness** (दुःखान्त नाटक)
1887. *On Life.* (दार्शनिक निबन्ध)
1889. *Culture's Holiday.*
*Kreutzer Sonata.**
1891 *The Fruits of Culture.* (सुखान्त नाटक)
1892. *Articles on the Famine.*
1893 *The Kingdom of God Is Within You**
(युद्ध तथा सर्कार के विरुद्ध)
1894. *Reason and Religion*
1895. *Master and Man.**
1898. *What is Art ?*
1899. *Resurrection.** (अन्तिम महत्त्वपूर्ण उपन्यास)
1900. *The Slavery of Our Times.*
Thou Shalt Not Kill.
1905. *The One Thing Needful.*
1906. *Shakespeare and the Drama,*
1908. *I Cannot Be Silent**
*Father Sergius.** (अपूर्ण)

उमरावसिंह कारुणिक

टाय की आत्मकहानी
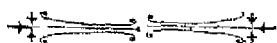
पहिला प्रकरण
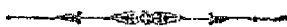
प्राचीन यूनानी धर्म में पला था। बचपन में मुझे यूनानी धर्म की शिक्षा दी गई थी तथा बड़े होकर मैंने स्वयं उसे सीखा। किन्तु १८ वर्ष की अवस्था में जब मैंने विश्वविद्यालय (University) को अन्तिम नमस्कार किया तो जो कुछ मैंने सीखा था उस में से मेरा विश्वास जाता रहा। जहां तक मुझे इस

ड़ता है, मुझे कभी भी किसी बात में पूर्ण विश्वास ा। मेरे धर्म का आधार केवल विश्वास था और अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ था

मुझे याद है कि जब मैं १२ वर्ष का था, एक दिन एक लड़का—जिसे मरे हुये बहुत दिन हुवे—रविवार के दिन मेरे पास आया और कहने लगा कि स्कूल मे एक नूतन अन्वेषण हुआ है और वह नूतन अन्वेषण यह है कि ईश्वर कोई चीज़ नहीं है। जो कुछ हम को उसके विषय में सिखाया गया है, लोगो की घड़न्त है। यह बात सन् १८३८ ई० की है। मुझे याद है कि जब लड़के ने यह बात कही तो सब को मनोरञ्जक मालूम हुई। मुझे यह भी याद है कि जब मेरा बड़ा भाई डिमेट्री (Demetry) प्रतिदिन गिरजा में जाया करता था तथा ब्रत रक्खा करता था तो सदैव हम सब उस पर हंसा करते थे। हम ने हंसी में उसे नूह (Noah) का उपनाम दे दिया था। मुझे याद है कि काज़न विश्व-विद्यालय (Kazan University) के संरक्षक ने मुझे और मेरे बड़े भाई को एक नाच में सम्मिलित होने के लिये बुलाया था। जब मेरे बड़े भाई ने उपस्थित होने में अस्वीकृति प्रगट की तो संरक्षक ने यह युक्ति दी कि दाऊद भी आर्क के सन्मुख नाचे थे। मुझे इस प्रकार की बातों में बड़ा मज़ा आया करता था। मैंने उनसे यह परिणाम निकाला कि धार्मिक प्रश्नों तथा उनके उत्तरों को याद कर लेने में कोई हानि नहीं है। यह कुछ आवश्यक नहीं है कि उन उत्तरों पर हमारा विश्वास भी हो।

मुझे याद है कि जब मैं छोटा था तो मैंने वाल्टेयर (Voltaire) की रचनायें पढ़ी थीं। मुझे उस की हास्य-रसात्मक चोटें बहुत अच्छी मालूम हुई। मेरा विश्वास, अपने समान अन्य मनुष्यों की भांति, धीरे २ कम होता गया। यह कमी इस प्रकार होती है कि मनुष्य अन्य मनुष्यों के समान जीवन व्यतीत करने लगता है। संसार के मनुष्यों के धर्म तथा उनके कामों में बहुत भेद होता है। यदि सिद्धान्त तथा जन साधारण में प्रचलित बातें विरोधात्मक होती हैं तो सिद्धान्त की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता

किसी मनुष्य के जीवन अथवा उसके कामों से उस के ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी होने का पता नहीं चलसकता। बहुधा देखा गया है कि प्रत्यक्ष में पुरानी बातों पर विश्वास रखने वाले मनुष्य अल्पज्ञ, कठोर प्रकृति तथा मक्कार होते हैं। इस के विरुद्ध नास्तिक लोगों में प्रतिभा, ईमानदारी, पवित्रता तथा सच्चरित्रता बहुतायत से मिलती है। स्कूल के विद्यार्थियों को धार्मिक प्रश्नोत्तर पढ़ाये जाते हैं। साधारण युवकों के लिये आवश्यक है कि अपने धर्म का सर्टिफ़िकेट (Certificate उपस्थित करें। किन्तु हमारी कोटि के मनुष्यों के लिये न तो स्कूल में जाना आवश्यक है, न कतिपय अन्य नियमों का पालन अनिवार्य है। ऐसे मनुष्य जीवन व्यतीत कर देते हैं और उन्हें एक बार भी ध्यान नहीं आता कि वे ईसाई हैं। वे कभी नहीं सोचते कि उनके धार्मिक सिद्धान्त क्या हैं?

ऐसा देखा गया है कि ये धार्मिक सिद्धान्त, जिनकी भित्ती केवल विश्वास होता है, जीवन व्यतीत करने में किसी प्रकार की सहायता नहीं देते। साधारणतया मनुष्य की धारणा रहती है कि वह अपने धर्म पर दृढ़ रहे किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पुराने धर्म का लेशमात्र भी शेष नहीं रहता। एक मनुष्य ने जिसे मैं बुद्धिमान तथा सच्चा समझता हूं अपने विश्वास के नष्ट होने की कहानी इस प्रकार सुनाई थी.—

छब्बीस वर्ष हुवे मैं एक बार आखेट के लिये गया था। विश्राम करने से पूर्व मैं ने घुटनों के बल बैठ कर नमाज़ पढ़ी। मेरा भाई कुछ दूर बैठा हुआ यह बात देख रहा था। जब मैं प्रार्थना समाप्त कर चुका तो मेरे भाई ने मुझसे कहा कि क्या अब तक तुम्हारे विचार ऐसे ही हैं। मेरी और मेरे भाई की इस विषय पर कुछ बात चीत हुई उस दिन से मैंने गिरजे में जाना तथा प्रार्थना करना छोड़ दिया।

तीस वर्ष से उस मनुष्य ने प्रार्थना नहीं की है, न वह गिरजा में गया है और न उसने उपवास ही रक्खा है। इस का यह अर्थ नही है कि उस के भाई के विचारों का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा या उस के व्यक्तिगत विचारों में एक साथ परिवर्तन होगया। बात यह हुई कि गिरती हुई दीवार में उस के भाई ने भी एक उंगली लगादी। उस के दिल में यह बात पूरी तरह जम गई कि जो काम वह करता था वह निरर्थक था। जब यह विचार दृढ़ होगया तो फिर प्रार्थना करना असम्भव था। मेरे विचार मे बहुधा मनुष्यों की यही दशा होती है।

मैं अपनी कोटि के मनुष्यों का वर्णन कर रहा हूं जिन्होने धर्म को सांसारिक लाभ प्राप्त करने का द्वार नहीं बना रक्खा है। जो मनुष्य धर्म से सांसारिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, उनको काफ़िर समझना चाहिये। मेरी कोटि के मनुष्यों की दशा यह होती है कि यातो उनके धार्मिक भाव, जिन का आधार विश्वास मात्र होता है, उनकी विद्या के सम्मुख न ठहर सकने के कारण नष्ट होजाते हैं या वे इतने बेपरवाह होते हैं कि उन्हें अपने धार्मिक भावो के नष्ट होजाने की खबर तक नहीं होती और जीवन व्यतीत किये जाते हैं। आरम्भिक अवस्था में जो विचार मेरे अन्दर भरे गये थे वे धीरे २ नष्ट होगये। मै १५ वर्ष की आयु ही से दर्शन शास्त्र का अध्ययन करने लगा था। इस कारण मुझे अपने काफ़िर होने का पूरा ज्ञान था। सोलह वर्ष की आयु से मैंने प्रार्थना करनी छोड़ दी थी तथा व्रत को अन्तिम नमस्कार कह दिया था। बचपन में सीखे हुवे धार्मिक सिद्धान्तों पर से मेरा बिल्कुल विश्वास उठ गया था। किन्तु मुझे किसी वस्तु पर एक प्रकार का ऐसा विश्वास था जिसे मैं शब्दों में वर्णन नही कर सकता मैं ईश्वर में विश्वास करता था या यों कहिये कि मैं ईश्वर

के अस्तित्व से इन्कार नहीं करता था। किन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नहीं बता सकता था। मैं प्रभु ईशु तथा उनकी शिक्षा के भी विरुद्ध नहीं था किन्तु उनकी शिक्षा का तत्व नहीं बता सकता था। जब मैं उन दिनों का ध्यान करता हूं तो मुझे याद पड़ता है कि मेरा विश्वास था कि मनुष्य 'पूर्णता' प्राप्त कर सकता है। किन्तु मैं यह नहीं बता सकता था कि 'पूर्णता' क्या पदार्थ है? मैं ने 'पूर्णता' प्राप्त करने के लिये बड़े२ मानसिक परिश्रम किये। बहुत सी पुस्तकों का अध्ययन किया। अपनी इच्छा शक्ति को बढ़ाया। शारीरिक शक्ति को बढाने के लिये भिन्न२ प्रकार के व्यायाम किये। जानबूझ कर बहुत सी आपत्तियों का सामना किया। मैं इन सब बातों को 'पूर्णता' प्राप्त करने के लिये आवश्यक समझता था। आरंभ में मेरा विचार सदाचार में 'पूर्णता' प्राप्त करने का था। किन्तु बाद मे मेरा यह विचार होगया कि प्रत्येक बात में 'पूर्णता' प्राप्त करनी चाहिये। या दूसरे शब्दों में यों कहिये कि मैं केवल ईश्वर की दृष्टि ही मे 'पूर्णता' प्राप्त नहीं करना चाहता था, प्रत्युत् मेरी इच्छा थी कि अन्य मनुष्य भी मेरा मान करें। इस इच्छा से एक और दूसरी इच्छा पैदा हुई और वह यह कि मुझे अन्य मनुष्यों से अधिक मान शक्ति तथा रुपया पैसा प्राप्त हो।

दूसरा प्रकरण ।

सम्भव है कि मैं भविष्य में कभी अपनी जीवन-कथा सुनाऊं तथा करुणोत्पादक या अनुकरणीय घटनाओं का विस्तृत वर्णन करूं। जिस प्रकार मेरा जीवन व्यतीत हुआ है उसी प्रकार अन्य बहुत से मनुष्यों का भी हुआ ोगा । मैं हृदय से इस बात की खोज में था कि मैं नेक था अच्छा मनुष्य बनूं, किन्तु मैं युवा था तथा विषय वास-ओं के आधीन था । इसके अतिरिक्त नेकी की खोज में इकला ा। जब मैं ने दूसरों से अपने नेक बनने की हार्दिक इच्छा प्रगट की । लोगों ने मेरी हंसी उड़ाई और मुझ को घृणा की दृष्टि से खा। किन्तु जब मैं ने पाशविक वृत्तियां प्रगट कीं तो लोगों ने री प्रशंसा की। मैंने सांसारिक वासनाओं—विषय, भोग, घमण्ड, ोध, बदला आदि का—बड़ा मान देखा । जब मैंने इस विषय में

अपने पूर्वजों का अनुकरण किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि लोग मुझसे प्रसन्न हैं और मैं कोई नई या अनोखी बात नहीं कर रहा हूं। मेरी प्यारी चाची जो वास्तव में बड़ी सज्जन महिला थीं मुझ से कहा करती थीं, "मैं तुम्हारी भलाई के लिये सब से अधिक इस बात को इच्छुक हूं कि तुम्हारा किसी विवाहिता स्त्री से अनुचित सम्बन्ध हो जाय। दूसरी बड़ी इच्छा यह हैं कि तुम एडजुटैन्ट (Adjutant) हो जावो। महाराज के एडजुटैन्ट हो जावो तो और भी अच्छी बात है। तीसरी इच्छा यह है कि तुम्हारा विवाह किसी धनवान स्त्री से हो जिस के जहेज़ में बहुत से नौकर आवें।"

जब मैं अपने जीवन के उस समय पर दृष्टि डालता हूं तो मुझे बड़ा कष्ट तथा अत्यन्त घृणा होती है। मैं ने युद्धों मे नरहत्या की। दूसरों की जान लेने के विचार से डूएल्स (Duels) लड़े। जुवा खेला। कृषकों के कठिन परिश्रम से उपार्जित धन को व्यर्थ के कामों में व्यय किया। दुराचारिणी स्त्रियों से सम्बन्ध रक्खा। आदमियों को धोका दिया। मिथ्याभाषण, लूटमार, मद्यपान, निर्दयता, नरहत्या आदि सब ही कुछ किया। स्यात् ही संसार का कोई ऐसा बुरा होगा जो मुझ से बचा होगा। इस पर भी मैं दूसरे मनुष्यों की दृष्टि में भद्र पुरुष समझा जाता था। दस वर्ष तक मेरा जीवन इसी प्रकार व्यतीत हुआ।

इस समय जो कुछ मैं लेख आदि लिखा करता था वे भी नाम तथा धन के लिये। ग्रंथ-लेखक के रूप में भी मैं उसी सड़क पर चला जिस को मनुष्य होने की दृष्टि से अपने लिये पसंद किया था। पद तथा धन उपार्जन करने के विचार से मैंने अपने उच्च विचारों पर परदा डाल दिया तथा समय की गति के अनुसार चलना आरंभ कर दिया। कईबार अपने लेखों में उच्च विचारों

की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया या उनकी हंसी उड़ाई। प्रशंसा प्राप्त करने के विचार से छोटी २ बातों की ओर ध्यान दिया छब्बीस वर्ष की अवस्था में युद्ध समाप्त होने पर मैं सैन्ट पीटर्सबर्ग में आया तथा प्रसिद्ध २ ग्रन्थ लेखकों से मिला। उन्होंने बड़े ज़ोर शोर से मेरा स्वागत किया तथा मेरी बड़ी प्रशंसा की।

मेरे विचार भी उस समय के अन्य मनुष्यों की भांति होगये। पवित्रता से जीवन व्यतीत करनेका पहिला उद्देश्य काफूर होगया। अन्य लेखको के समान मैं भी सोचने लगा कि मनुष्य जाति उन्नति कर रही है। इस उन्नति मे सब से बड़ा भाग लेखकों तथा कवियो का है। हमारा काम संसार को शिक्षा देना है। इस प्रश्न का उत्तर-कि स्वयं मेरा ज्ञान-क्षेत्र कितना विस्तीर्ण है तथा मैं दूसरों को क्या लाभ पहुचा सकता हूं—अन्य लेखकों के समान मैं इस प्रकार से लिया करता था कि लेखकों को इस झगड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। उनके ज्ञान के बिना ही संसार पर उनके विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। लोग मुझे उच्च कोटि का लेखक तथा कवि मानने लगे। अतएव मैंने उपरोक्त प्रश्न का ठीक२ तथा विस्तृत उत्तर प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। लेखक तथा कवि तो मै था किन्तु मैं सच कहता हू कि मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि मैं किस बात का उपदेश देता हूं तथा मेरे लेखों का क्या प्रभाव पड़ेगा। लेखों द्वारा मुझे कई बात प्राप्त हुई। बहुत सा रुपया मिला। स्वादिष्ट भोजन मिले। सुन्दर घर मिला। भोग विलास के लिये स्त्रियें मिलीं। मित्रों की आव भगत करने का अवसर मिला तथा यश प्राप्त हुवा। अब मुझे अच्छी तरह प्रमाणित होगया कि मै ने जो कुछ उपदेश दिये वे बहुत अच्छे होंगे। मैं समझने लगा कि लेख लिखने तथा कवितायें बनाने से अधिक बुद्धिमत्ता का कोई काम नहीं है। मै अपने आप को

उच्च कोटि का लेखक समझने लगा। कुछ समय तक अपने इस विश्वास में मैंने कुछ भी कमी न आने दी।

किन्तु ग्रन्थ लिखने के दूसरे तथा विशेषतया तीसरे वर्ष से मेरा विश्वास कुछ २ ढीला पड़ने लगा। पहिली शंका तो इस कारण हुई कि सब लेखक किसी विषय पर एक मत नहीं होते। कुछ कहते हैं कि हम ही सत्य पर हैं तथा संसार के शेष लेखक गलती पर हैं। कुछ लेखक समझते रहते हैं कि—जो कुछ हैं हम ही हैं। संसार के अन्य मनुष्यों के समान ही लेखकों में भी परस्पर वैसे ही झगड़े, गाली-गलोज तथा कपट-व्यवहार होते हैं।

हम में से कुछ लेखक ऐसे भी थे जिन्हें अपने लाभ के अतिरिक्त अच्छे बुरे से कुछ मतलब नहीं था। इन सब बातों से मैं ने सोचा कि ग्रंथ-लेखन के विषय में मैंने जो विचार निश्चित कर रक्खा है उस में संशोधन की आवश्यकता है। इस के अतिरिक्त जब मैंने लेखकों के आन्तरिक-जीवन पर गहरी दृष्टि डाली तो मुझे मालूम हुआ कि उन में से बहुतों का जीवन बड़ी बदचलनी का है तथा उनसे अच्छे मनुष्य मैंने सिपाहियों तथा अन्य काम करने वालों में देखे हैं; किन्तु लेखक अपने आप को बहुत सच्चरित्र समझते हैं।

मुझको मनुष्य जाति तथा अपने आप से घृणा होगई। मैं पूरी तरह यह बात समझ गया कि लेखन-कार्य के विषय में जो विचार मैंने निर्धारित किये थे, वे भ्रमात्मक थे। यद्यपि इस विषय संबन्धी अपने विचार मैंने बदल दिये, किन्तु उनके कारण जो कुछ दिखावटी लाभ होता था उसे नहीं छोड़ा। मैं बराबर अपने आपको लेखक, कवि तथा मार्ग प्रदर्शक समझता रहा। मै भली भांति जानता था कि मै दूसरों को उपदेश देता हूं किन्तु

मैं नहीं जानता था कि मैं क्या बात सिखाता हूं। मुझे अन्य लेखकों की संगति से बड़ी हानि पहुंची। घमंड, पागलपन की सीमा तक बढ़ गया। जब मैं उस समय की अपनी तथा अन्य लेखकों की दशा याद करता हू तो वे ही विचार मेरे सन्मुख उपस्थित होजाते है जो पागलखाने में प्रवेश करने से पहिले पैदा होते हैं। हम सब का यह विश्वास था कि हम लोग जितना अधिक लिख या बोल सकें तथा जितनी अधिक रचनायें प्रकाशित कर सकें उतना ही संसार के लिये हितकर है। प्रत्युत् यह कहना चाहिये कि संसार का अस्तित्व ही हमारे विचारों पर है। सैकड़ों लेखक अपनी पुस्तकें प्रकाशित कराते थे तथा एक दूसरे का खण्डन करते थे या बुरा भला कहते थे। बिना यह सोचे हुवे कि अच्छे बुरे की समस्या अभी तक हमने निर्धारित नहीं की है, बराबर लिखते चले जाते थे। या तो ठठेरा २ बदलौवल की कहावत के अनुसार आपस में प्रशंसा किया करते थे या एक दूसरे की निन्दा करने पर तुल जाया करते थे। सारांश यह है कि हमारे काम बिल्कुल वैसे ही होते थे जैसे पागलों के होते हैं। मुद्रणालय में सैंकड़ों मनुष्य टाइप एकत्रित करके हमारी रचनाओं के लाखों पृष्ठ छापा करते थे। डाक के द्वारा हमारी रचनायें सारे रूस में फैल जाया करती थीं। हमलोग आपस में शिकायत किया करते थे कि कोई नहीं सुनता। इस शिकायत की वास्तविकता अब मेरी समझ में आगई। हमारा वास्तविक उद्देश्य यश तथा धन प्राप्त करने का था। इन दोनों बातों को प्राप्त करने के लिये पुस्तकें लिखने तथा समचार-पत्रों मे लेख देने से अच्छा और कोई काम हमें नहीं मालूम था। अपने अस्तित्व को लाभदायक प्रमाणित करने के लिये हमने संसार की समस्या को इस प्रकार हल किया था कि संसार

मे जो कुछ उपस्थित है सब ठीक है। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व उसके क्रमानुसार उन्नति पर निर्भर है। उन्नति सभ्यता के कारण है। सभ्यता की उच्च-कोटि हमारी रचनाओं पर निर्भर है। हम लोगों का मान हमारी पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों के कारण होता है। अतएव हमारा अस्तित्व समाज के लिये सबसे अधिक आवश्यक है। हम बहुत उच्च पद के मनुष्य हैं। यदि सब लेखकों का इस युक्ति पर एक मत होता तो यह अवश्य ठीक मानी जाती। किन्तु जब हम लोगों में से कोई लेखक कुछ सम्मति प्रगट करता था तो तत्काल ही कोई दूसरा लेखक उसका खण्डन कर दिया करता था। हमारी समझ मे नहीं आता था कि वास्तविक बात क्या है। किन्तु ऐसी बातों की ओर हम अधिक ध्यान नहीं दिया करते थे। जब वे लोग, जो हमसे सहमत होते थे, हमारी प्रशंसा किया करते थे तो हम समझ लेते थे कि हम ठीक हैं। अब मुझे यह भली भांति प्रगट होगई कि पागलों में और हम मे बिल्कुल भेद नहीं था। पागलों के समान उस समय हम अपने अतिरिक्त सारे संसार को पागल समझते थे।

तीसरा प्रकरण।

इस बेहोशी में मैंने छः साल अपने चि
और व्यतीत किये। उस समय मैंने
अन्य देशों का भ्रमण भी किया त
देशोंके प्रसिद्ध तथा प्रतिभा-शाली म
मिला। उनका भी यही विचार था कि
को प्रत्येक प्रकार पूर्ण बनना चाहिये। इन सब देशो
मनुष्यों के विचार उन्नति के विषयों में एक से थे।
समझता था कि उन्नति शब्द के अवश्य कुछ अर्थ हैं
मेरी समझ में न आता था कि अपने जीवन को किस
उत्तम बनाऊं। मैं उस मनुष्य के समान था जो नाव में
और हवा की लहरों और झकोरों से बहा जा रहा हो।
इतना जानता है कि कहीं जा रहा है। किन्तु कहां? उस
उत्तर नहीं दे सकता। अस्तु, मेरी दशा भी ठीक ऐसी
किन्तु कभी २ हृदय (मस्तिष्क नहीं) उस समय के
के विरुद्ध क्रान्ति करता था और कहता था कि वास

कुछ और है। उदाहरणतः पैरिस में मैंने एक मनुष्य को फांसी पर चढ़ते देखा। तब मुझे अनुभव हुआ कि उन्नति के विषय में जो प्रख्यात २ पुरुषों के विचार हैं। वे ठीक नहीं हैं। जब मैंने सर को तन से पृथक होते हुवे देखा तथा दोनों के सन्दूक में गिरने का शब्द सुना, तो मुझे प्रतीत हुआ कि संसार के आरम्भ से आज तक चाहे मनुष्यों ने कितनी ही अच्छी २ युक्तियों से इस काम को उचित ठहराया हो, किन्तु मेरी तबियत के अनुसार तो यह बहुत बुरा काम था तथा उन्नति को इस से कोई संबन्ध नहीं था। अब मेरी अच्छे, बुरे या नेकी बदी तथा उन्नति की कसौटी लोगों की राय नहीं रही, किन्तु अपने व्यक्तिगत विचार तथा अपनी तबियत होगई।

दूसरी घटना जिससे मेरे उन्नति विषयक विचारों को एक बड़ा धक्का लगा मेरे भाई की मौत थी। वह युवावस्था में बीमार पड़ा तथा वर्ष भर अत्यन्त कष्ट सह कर चल बसा। वह बहुत ही योग्य, दयालु तथा गम्भीर मनुष्य था, किन्तु उस की समझ में न आया कि वह क्यों बीमार हुआ और क्यों मरा? उन्नति या जीवन संबन्धी कोई युक्ति भी मेरा या उसका समाधान नहीं कर सकी। किन्तु फिर भी विवश होकर मैंने इस विचार पर संतोष कर लिया कि संसार की प्रत्येक वस्तु उन्नति कर रही है। मेरे भाई की मृत्यु की समस्या यद्यपि मेरी अभी समझ में नहीं आई है, किन्तु फिर कभी भविष्य में आजायगी।

विदेश से लौटने पर मैं गांव में रहने लगा तथा कृषकों की शिक्षा के लिये स्कूल खोले। इस काम से मुझे शांति हुई, क्योंकि शिक्षा का कार्य कपटी लेखकों के काम से कहीं अच्छा था।

किन्तु शिक्षा का कार्य भी मैंने उन्नति के सिद्धान्त के आधार पर आरम्भ किया। भेद केवल इतना था कि अब मुझ में सूक्ष्म

विचार तथा तर्कना करने की शक्ति बढ़ गई थी। मैंने सोचा कि उन्नति के नाम को बहुधा मनुष्यों ने बदनाम किया है। अतएव मैंने यह उचित समझा कि कृषकों तथा उनकी संतति को पूर्ण स्वतंत्रता देदूं कि जिन बातों मे वे उन्नति समझें उसी के अनुसार काम करें। किन्तु अभी तक सबसे बड़ी समस्या हल होनी शेष थी। शिक्षा संबन्धी बातों पर भी बड़े २ शिक्षकों का एक मत नहीं था उनके शिक्षा विषयक सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी थे। बहुधा उन को कभी २ अपनी अल्पज्ञता प्रगट करनी पड़ती थी। मुझे सीधे सादे कृषकों तथा उनके बच्चों से काम पड़ा। इस कारण मैंने उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता देदी कि वे जो चाहें पढ़ें। शिक्षा के संबन्ध में जो तजुर्बे मैंने किये थे, उन्हें याद करके अब हंसी आती है। यद्यपि मै अपने दिल में समझता था कि मैं किसी प्रकार की उपयोगी शिक्षा देने में असमर्थ था, क्योंकि स्वयं मैं ही न जानता था कि कौन सी शिक्षा उपयोगी है तथा कौनसी अनुपयोगी। एक वर्ष तक स्कूल स्थापन के काम में रह कर मैं ने फिर अन्य देशों का भ्रमण इस विचार से किया कि वहां जाकर देखूं कि शिक्षा का काम किस प्रकार भली भांति चल सकता है।

भ्रमण करते समय मुझे ध्यान आया कि मैंने शिक्षा की समस्या हल करली है। अतएव उसी वर्ष जब रूस सर्कार ने कृषकों को स्वतन्त्रता दी थी। मैं अपने देश को लौट आया। लौटने पर मैं ने मैजिस्ट्रेटी का पद स्वीकार कर लिया और अशिक्षित मनुष्यों को स्कूलों के द्वारा तथा शिक्षित मनुष्यों को पत्र-पत्रिकाओं द्वारा शिक्षा देने लगा। कुछ दिनों तक यह काम बराबर इसी तरह चलता रहा था। किन्तु शीघ्र ही मुझे अनुभव हुआ कि मेरा मस्तिष्क ठीक दशा में नहीं है तथा शीघ्र ही मुझ में कोई परिवर्तन होने वाला है। यदि उन दिनो शीघ्र ही मेरा विवाह न हो जाता तो सम्भवत मेरी वही निराशा की दशा होती जो

पन्द्रह वर्ष पश्चात् हुई। एक वर्ष तक मैं मजिस्ट्रेटी का काम, स्कूलों का काम तथा पत्र पत्रिकाओं का काम करता रहा। मेरी आर्थिक अवस्था इतनी खराब होगई कि मुझे जान छुड़ानी कठिन होगई। मैजिस्ट्रेटी का काम मुसीबत का सामना था। दिन प्रति दिन शिक्षा का कार्य्य अन्धकार-मय होता गया। पत्र पत्रिकाओं का काम इतना फीका मालूम देने लगा कि मुझे बिल्कुल समझ मे न आया कि मैं क्या सिखा रहा हूं तथा लोगों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। परिणाम यह हुआ कि मैं बीमार पड़ गया। इस बीमारी की दशा में शारीरिक कष्ट की अपेक्षा मानसिक कष्ट बहुत अधिक था। अतएव मैं पहाड़ों को चला गया जिस से अच्छी वायु मिले, घोड़ी का दूध पीऊ तथा पशुओं के समान जीवन व्यतीत करू।

लौटने पर शीघ्र ही मेरा विवाह होगया तथा मेरे विचारों में बहुत परिवर्तन होगया। जीवन, तथा उन्नति की समस्याओं की ओर से हट कर अब मेरा ध्यान स्त्री तथा बाल बच्चों में जा फंसा इस प्रकार मेरे जीवन के पन्द्रह वर्ष व्यतीत हुवे। यद्यपि उन दिनों मैं लेखन- कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता था, किन्तु बराबर लिखता रहता था। लेखन--कार्य के जाल में इस कारण से और भी फंसा रहा कि उन से मुझे आर्थिक लाभ पहुंचता था तथा मेरा मान बढ़ता था। इस के अतिरिक्त मुझे रुपया पैदा करने का और कोई ढंग नहीं मालूम था। उन दिनों की रचनाओं में मैं उसी बात का उपदेश दिया करता था। जो मुझे सत्य मालूम पड़ती थी-अर्थात् जीवन का उद्देश्य अपने आपको तथा अपने संबन्धियों को सुख पहुंचाना है। इस प्रकार मैं रहता रहा, किन्तु पांच वर्ष हुवे मेरी मानसिक दशा असाधारण रूप से अशान्ति मय होगई। मैं अति व्याकुल रहने लगा। मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया कि किस प्रकार जीवन व्यतीत करू किन्तु ये दिन भी व्यतीत

होगये तथा फिर पूर्ववत् जीवन-व्यतीत करने लगा। कुछ दिनों बाद फिर पहिली आकुलता ने आ घेरा। इस दशा में बारंवार दिल में ये प्रश्न उठते थे कि "क्यों?" "अन्त में क्या परिणाम होगा?"

आरम्भ में मैंने सोचा कि ये प्रश्न व्यर्थ है। जो कुछ इन प्रश्नों के उत्तर हैं, मुझे भली भांति ज्ञात है। यद्यपि इस समय मेरे पास अधिक समय इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये नहीं है किन्तु मैं जब चाहूंगा इन प्रश्नो का उत्तर दे लूंगा। किन्तु ये ज़ोर पकड़ते गये तथा प्रत्येक समय दृष्टि के सन्मुख रहने लगे और विवश करने लगे कि हमारा उत्तर दो। मेरी वही दशा हुई जो उस रोगी की होती है जिस को आरम्भमें साधारण सा रोग होता है किन्तु छिपे २ वही रोग इतना बढ़ जाता है कि कुछ दिनों बाद जीवन असह्य होजाता है तथा उसे प्रतीत होने लगता है कि अब मैं मौत के पञ्जे में हूं। ठीक यही मेरी मानसिक दशा हुई। मुझे मालूम होने लगा कि ये प्रश्न साधारण नहीं है। उनका बार बार सामने आना कहता है कि इन का उत्तर अवश्य मिलना चाहिये। मैं ने उन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया। आरंभ में तो ये प्रश्न सीधे सादे तथा बेहूदा और मूर्खता के मालूम हुवे। किन्तु जूं जूं मैं उन की ओर ध्यान देता गया मुझे मालूम होता गया कि इन प्रश्नों का संबन्ध जीवन की विशेष समस्याओं से है तथा चाहे मैं कितनी ही बातें क्यों न बनाऊं मैं इन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हूं।

जायदाद का प्रबन्ध, लड़कों की शिक्षा, तथा ग्रन्थ-लेखन आदि सब कामों से पहिले यह आवश्यक है कि मैं इस बात को मालूम करूं कि मैं ये काम क्यों करता हूं। जब तक मुझेअपने काम करने के कारण न मालूम हों, मैं कुछ नहीं कर सकता परन्तु जीवित नहीं रह सकता उन दिन बहुधा यह प्रश्न मेरे

सन्मुख रहा करता था— "अच्छा इन दिनों मेरे पास सुमारा प्रान्त में छः एकड़ भूमि तथा तीन सौ घोड़े हैं, किन्तु फिर क्या ? मैं बहुत व्याकुल रहा करता था और समझ में न आता था कि क्या करूं ? कभी यह प्रश्न उठता था—"मुझे क्या आवश्यकता है कि अपने बच्चों को शिक्षा दूं ? " सर्वसाधारण के लाभ का जब प्रश्न आता था तो मैं कहा करता था—"मुझे इस से क्या मतलब है ? " अपनी रचनाओं की ख्याति की ओर जब दृष्टि जाती थी तो मैं कहा करता था—"यदि गागल, पोशकन, शैक्सपियर, मोलियर या संसार के सब लेखकों से अधिक भी नाम हुवा तो भी क्या ? " अस्तु। मेरे पास इन प्रश्नों का कुछ उत्तर न था, शीघ्र उत्तर देने की अत्यन्त आवश्यकता थी क्योंकि इस के बिना जीवन कष्टमय था। परन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं थे।

चौथा प्रकरण ।

मेरे जीवन का यन्त्र चलते २ एक दम बन्द होगया। मैं सांस लेता था, खाना खाता था, पानी पीता था, सोता था, किन्तु वास्तव मे जीवन लुप्त होगया था। मेरे दिल में एक भी ऐसी इच्छा नहीं थी जिस के लिये मै प्रयत्न करता।

दिल मे यादे यार व ख़्वाहिशे वस्ल तक बाकी नहीं।
आग इस घर में लगी ऐसी कि जो था जल गया॥

यदि किसी बात के लिये जी चाहता था तो पहिले से यह विचार होजाया करता था कि यदि वह बात होगई तो वाह २ और न हुई तो वाह २ मुझ को अशांति अवश्य रहेगी। यदि कोई परी मेरे सामने आती और मुझ से पूछती कि मैं क्या चाहता हूं तब भी मैं अपनी इच्छा नहीं बता सकता था। यदि किसी समय मुझे वहम सा हो जाता था और कोई इच्छा पैदा हो जाती थी तो गहरी दृष्टि डालने पर मालूम होता था कि वह इच्छा व्यर्थ थी।

मेरे लिये सत्य केवल इस बात मे था कि जीवन एक निरर्थक पदार्थ है। प्रति दिन तथा प्रति क्षण ऐसा मालूम होता था कि मैं किसी ऐसे खड्ड के किनारे खड़ा हूं जहां से जान बचा कर आना असंभव है। संसार की सारी आपत्तियें मेरी दृष्टि के सन्मुख थीं तथा मेरा जीवन प्रलय का दृश्य था। अतएव मैं स्वस्थ तथा हंस मुख मनुष्य होने पर भी यह समझने लगा कि मेरे लिये अब जीवित रहना कठिन है तथा कोई शक्तिशाली शक्ति मुझे क़ब्र की ओर लिये जाती है। जो शक्ति मुझे मृत्यु को ओर लिये जाती थी वह उतनी ही शक्तिशाली थी जितनी कि किसी समय में जीवित रखने वाली शक्ति थी। आत्महत्या का विचार अब मेरे दिल में आप ही आप इसी प्रकार आता था जैसे किसी समय मे अपनी दशा को सुधारने का विचार आया करता था। आत्महत्या के विषय मे भी मैं अपने दिल को एक धोका देता था। मैं अपनी जान लेने मे शीघ्रता नहीं करना चाहता था, क्योंकि मेरा विचार था कि पहिले अपनी शंकाओं का समाधान करलूं, बाद में जान खोने के बहुत से अवसर मिलेंगे। मैं कभी २ प्रसन्न हो जाया करता था। किन्तु फिर भी मैंने अपने पुस्तकालय के रस्सी के टुकड़े को अपनी दृष्टि से छिपा दिया जिस से मैं किसी समय फांसी खाकर न मर जाऊं। अपने साथ बन्दूक़ रखनी भी इसी कारण छोड़ दी थी कि कहीं अपना काम तमाम न करलूं। मेरी समझ न आता था कि मैं क्या चाहता हूं। मैं जीवन से तंग था और उससे घबराता था। किन्तु फिर भी उससे एक ऐसी आशा रखता था जिसे वर्णन नहीं कर सकता।

ऐसे समय में जब कि मेरे जीवन मे सब बातें आनन्द देने वाली थीं तथा जब मेरी आयु पचास वर्ष की भी नहीं हुई थी मेरी दशा बहुत ही ख़राब थी। मेरी पत्नी नेक तथा प्रेम करने वाली थी मेरे बच्चे प्यारे और अच्छे थे. मेरी जायदाद पूरी

थी। बिना किसी प्रकार के कष्ट के उसकी मालियत बढ़ी थी। मेरे मित्र तथा मिलने वाले मेरा ख़ूब मान करते थे। बेजान पहचान के मनुष्य मेरी प्रशंसा करते थे। मैं स्वयं भी बिना अपने आपको धोका दिये इस बात का अनुमान लगा सकता था कि मैं दिन प्रति दिन अधिक यश प्राप्त कर रहा हूं। इस के अतिरिक्त मेरा मस्तिष्क स्वस्थ तथा सशक्त था। मेरे मस्तिष्क तथा शरीर में इतनी शक्ति थी जितनी मेरी कोटि के मनुष्यों या लेखकों मे कम होती है। मैं खेत काटने में किसानों का मुक़ाबला करता था तथा दस घन्टे लगातार बिना किसी प्रकार की हानि के मानसिक परिश्रम कर सकता था।

मेरे मस्तिष्क की उस समय ऐसी दशा थी कि मैं समझता था कि किसी ने मेरे साथ बड़ी बेवकूफ़ी और शरारत का मज़ाक किया है। किन्तु मैं यह नहीं जानता था कि किसने? यद्यपि मैं ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता था किन्तु फिर भी मैं यह परिणाम निकालने पर विवश हुआ था कि किसी ने मेरी हंसी उड़ा रक्खी है। यद्यपि इस विचार ने अन्धकार में कुछ प्रकाश पैदा किया, किन्तु मैं ने अपने दिल में सोचा कि यह व्यक्ति, चाहे कोई भी हो, एक ऐसे मनुष्य के साथ, जिसने अपने जीवन के तीस चालीस वर्ष शिक्षा तथा मानसिक उन्नति में व्यय किये हैं, एक अजीब तरह का मज़ाक कर रहा है। मुझे केवल यह मालूम होता था कि न तो जीवन कभी कोई वस्तु थी न अब है और न भविष्य में होगी। वह व्यक्ति जो मुझे व्याकुल कर रहा था अवश्य मुझ पर हंसता होगा। किन्तु मुझे इस का भी विश्वास न था कि कोई व्यक्ति ऐसा है भी या नहीं या केवल मेरा वहम ही वहम है? जीवन का तो कहना ही क्या है, मैं अपने किसी काम का भी उपयुक्त कारण नहीं बता सकता था। मुझे आश्चर्य केवल इस बात का था कि जो दशा मेरी उन दिनों हो रही थी पहिले क्यों न हुई? मैं समझता था कि रोग तथा मृत्यु अवश्य

आयगी जिस प्रकार कि मेरे मित्रों तथा प्रेमपात्रों को आई थी। यदि आज नहीं तो कल। उस समय दुर्गंध तथा कीड़ों के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रहेगा। उस समय मेरे सब काम भुला दिये जायेंगे और मेरा पता न होगा। फिर ऐसी दशा में किसी काम पर ध्यान देना व्यर्थ है। जब तक हमें जीवन का नशा है तब ही तक जीवन संभव है। जब नशा उतर जाता है जीवन मूर्खता तथा स्वप्न मालूम पड़ने लगता है। जीवन में कोई बात हंसी या दिल्लगी की नहीं है। वह केवल मूर्खता तथा निर्दयता से भरा हुआ है। एक पुरानी पूर्वीय कहानी है:—पहाड़ में किसी यात्री पर एक जंगली जानवर ने आक्रमण किया। यात्री अपनी जान बचाने के लिये एक सूखे हुवे कुंवे के घेरेमें कूद पड़ा। किन्तु कुंवे की तली में उसने एक दूसरा भयानक जानवर देखा जो उस के खाने के लिये तैयार था। अभागे यात्री ने एक वृक्ष की शाखा, जो कुंवे के घेरे के बीच में थी, पकड़ ली। यात्री न ऊपर आ सकता था न नीचे जा सकता था। उस की बाहें थक गई। अब उस को दोनों ओर मौत दीख ही रही थी कि इतने में एक काला और एक सफ़ेद दो चूहे निकले और वृक्ष की जड़ को काटने लगे। यात्री यह सब देखता है और जानता है कि वह अवश्य मरेगा। किन्तु फिर भी वह अपनी जिह्वा से पत्तों पर का शहद चाटने लगता है।"

ठीक यही दशा मेरी थी। मैं अपने दिल को बहुत ही समझाता था कि जीवन की समस्या हल नहीं हो सकती। इस कारण बिना सोचे समझे जीवन व्यतीत करना चाहिये। किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकता था। मुझे प्रतिक्षण यही ध्यान रहता था कि जो दिन या रात व्यतीत होता है मुझे मृत्यु के निकटतर लाता है। मुझे केवल इसी में सत्य मालूम होता था। शेष सब बातें झूठ मालूम देती थीं शहद की बूंदें जिन्हों ने मुझे सचाई से अलग

का रक्खा था मेरा अपनी पत्नी, बच्चों तथा रचनाओं से प्रेम था। मुझे ध्यान आता था कि मेरी पत्नी तथा मेरे बच्चे भी मेरे समान मनुष्य हैं। या तो वे भूल में हैं या उन्हें भी मेरे समान सच्चाई का सामना करना पड़ेगा। वे क्यों जीवित हैं? क्या यह आवश्यक है कि मैं उन्हें पालूं या उन की संरक्षना करूं? क्या उन की भी वैसी ही दशा कर दूं जैसी मेरी है या उन्हें भूल ही में रक्खूं?

अब ग्रन्थ-रचना तथा कविता की बात सुनिये। सफलता तथा प्रशंसा के नशे में मैं यह समझता था कि एक दिन मरना होने पर भी मुझे लिखने का काम जारी रखना चाहिये। किन्तु यह भी भ्रम था। रचनायें जीवन के मनोरञ्जन तथा आनंद का द्वार हैं। किन्तु जब जीवन ही बुरा मालूम हो तो रचनाओं का क्या किया जाय। जब तक मुझे जीवन की यथार्थता का पता न था, मुझे कविता तथा ग्रंथ लेखन अच्छा मालूम होताथा। किन्तु जब मुझे मालूम हो गया कि जीवन व्यर्थ है तो ये वस्तुयें मेरी शान्ति का कारण न रहीं। जब तक मेरा यह विचार था कि जीवन कोई वास्तविक पदार्थ है, संसार की सारी बातें मुझे प्रभावान्वित करती थीं। किन्तु जब यह मालूम होगया कि जीवन की वास्तविकता कुछ नहीं है, तो सारी बातें फीकी मालूम देने लगीं। जब भयानक जानवर तथा चूहे दृष्टिगोचर होगये तो, शहद का स्वाद जाता रहा। मैं उस मनुष्य के समान था जो जंगल में पथ भ्रष्ट होगया हो तथा व्याकुल मार्ग की खोज में इधर उधर दौड़ता फिरता हो।

यह व्याकुलता की दशा थी जिस से बचने के लिये मैं आत्म-हत्या करना चाहता था। जब मैं अपने परिणाम पर दृष्टि डालता था तो मुझे बड़ा भय लगता था। यह भय व्याकुलता की दशा से भी अधिक व्याकुल करने वाला था यद्यपि मैं जानता था कि

किसी दिन हृदय या शरीर के किसी अन्य अङ्ग में अधिक विकार उत्पन्न होने से जीवन की इतिश्री होजायगी, किन्तु मैं शांति के साथ मृत्यु की प्रतीक्षा करने में असमर्थ था। अतएव मैं रस्सी या गोली से अपने जीवन को समाप्त करने के विचार में रहा करता था।

पांचवा प्रकरण।
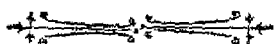
सम्भव है कि मैं जीवन समस्या पर विचार करते हुये किसी बात को छोड़ गया हूं या किसी बात का मतलब न समझा हूं। मैं बहुधा यह प्रश्न अपने दिल ही दिल में किया करता था कि मनुष्य किस लिये पैदा हुआ है? जो प्रश्न मुझ को कष्ट देते थे उनके उत्तर मैं प्रस्तुत विज्ञान की प्रत्येक शाखा में ढूंढा करता था। इस खोज में दिल जान से दिन रात लगा रहा। मैं ने उत्तरों की उसी प्रकार खोज की जिस प्रकार मरता हुआ मनुष्य अपनी जान बचाने की तरकीब ढूंढता है, किन्तु मुझे उत्तर न मिले। मैं अपनी खोज में केवल असफल ही न रहा प्रत्युत् यह विचार पक्का होगया कि अन्य मनुष्य भी, जिन्होंने मेरे समान खोज की होगी, असफल रहे होंगे तथा यह कि मनुष्य यदि दावे से कोई बात कह सकता है तो वह यही है कि जीवन एक निरर्थक पदार्थ है। केवल पुस्तकों पर ही मैंने सन्तोष नहीं किया। मैंने प्रत्येक दिशा मे खोज की। समाज में मेरा इतना मान था कि बड़े २ आदमियों तथा

विद्वानों से मेरी मित्रता थी। उन से भी मैंने अपनी शङ्काओं के विषय में प्रश्न किये किन्तु कुछ परिणाम न निकला। मुझे विद्या से वे सुविधायें प्राप्त थीं जो विद्वानों को हुवा करती हैं। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर कि "जीवन क्या है?" मुझे न मिला।

बहुत दिन हुवे मुझे इस बात का विश्वास होगया कि मानुषिक विज्ञान में इस प्रश्न का उत्तर नहीं है। कुछ दिनों बाद मैंने सोचा कि जब साइन्स उन बातों पर, जो जीवन-समस्या से हीन कोटि की है, बहुत ध्यान देता है; तो जीवन के समान मुख्य समस्या का बहुत उपयुक्त तथा विस्तृत उत्तर उसमें अवश्य होगा। इसी विचार से बहुत दिनों तक साइन्स वालों का विरोध करने का मेरा साहस न हुवा। मैं समझता रहा कि मेरी बुद्धि तथा ज्ञान में कुछ कमी है जिस के कारण मैं समझने में असमर्थ रहता हूं। मैंने इस प्रश्न को सब से अधिक आवश्यक समझ रक्खा था। मै निरत उस के उत्तर की खोज में लगा रहा। अन्तिम परिणाम यह निकला कि मैं गलती पर न था। वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर साइन्स में नहीं है। जिस प्रश्न के कारण मैंने पचास वर्ष की आयु में आत्म-हत्या का विचार कर लिया था वह बहुत साधारण तथा प्राकृतिक था। यह प्रश्न प्रत्येक बच्चे तथा बूढ़े के दिल में—चाहे वह कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो पैदा होता है। वास्तव में यह ऐसा प्रश्न है कि जब तक उसका उत्तर न मिल जाय जीवन बोझ मालूम होता है।

प्रश्न यह था—'जो काम मैं आज कर रहा हूं या कल करूंगा, उस का परिणाम क्या होगा?' दूसरे शब्दों में 'मुझे क्यों जीवित रहना चाहिये?' या कुछ बदले हुवे शब्दों में 'क्यों किसी वस्तु की इच्छा करनी चाहिये?' या कुछ और बदले हुवे शब्दों में 'क्या मेरा जीवन कोई ऐसी चीज़ है जो अवश्यमेव आने वाली मृत्यु पर विजयी होसके?'

यह एक ही प्रश्न है जिस को मैंने भिन्न २ रूपों में उपस्थित किया है। मैंने इस प्रश्न का उत्तर मानुषिक विज्ञान की सब शाखाओंमें ढूंढा। किन्तु उत्तर न मिला। विज्ञान दो प्रकार का होता है-एकतो प्रयोगात्मक विज्ञान अर्थात् Experimental Science और दूसरा दर्शन अर्थात् Theoretic Philosophy.(प्रयोगात्मक विज्ञान) कहता है कि ऐसा प्रश्न ही नहीं हो सकता है। दर्शन प्रश्न को तो स्वीकार करता है किन्तु उस का उत्तर देने में असमर्थ है। बहुत दिनों तक मैं साइन्स के भरोसे रहा। किन्तु इस प्रश्न पर मेरा जीना और मरना अवलम्बित था, इस कारण इहकालिक विज्ञान से मेरी तुष्टि नहीं हो सकी।

पहिले मैं कहा करता था कि संसार और मनुष्य उन्नति कर रहे हैं। मैं अपने आप को संसार का एक अङ्ग समझता था और सोचता था ज्यों २ संसार के संबन्ध में अन्वेषण होते जायेंगे। जीवन-समस्या स्वयं समझ में आती जायगी। मुझे कहते हुवे लज्जा आती है किन्तु कहे बिना नहीं रहसकता कि एक समय था जब मुझ को उन्नति अनुभव होती थी। उस समय मेरी स्मरण शक्ति तथा मेरे शारीरिक अङ्ग सब उन्नति की दशा में थे। किन्तु कुछ दिनों बाद वह समय विदा होगया और उन्नति के स्थान में अवनति मालूम होने लगी। मेरे सशक्त अङ्ग निर्बल होने लगे और दांत गिरने लगे। उस समय मुझे ध्यान हुवा कि यह उन्नति है या अवनति ? मैंने भूल से एक विशेष व्यक्तिगत भाव को एक सार्वभौमिक प्रकृति-नियम समझ लिया था।

इस उन्नति के नियम पर जब मैंने गहरी दृष्टि डाली तो मुझे मालूम हुवा कि यह दावा, कि प्रत्येक वस्तु एक एक अपरिमित अवधि तथा पेचीदगियों के पश्चात् पूर्णता प्राप्त करेगी, झूठ है। क्योंकि विज्ञान वाले स्वयं स्वीकार करते हैं कि अपरिमित को सरलता, तथा जटिलता, भूत या भविष्यत् , अच्छे तथा

बुरे की कुछ पहचान नहीं है। विद्या-प्राप्ति मनोरञ्जन से खाली नहीं है। जब तक साइन्स जीवन-समस्या को हल करने का दावा नहीं करता। उस की सारी बातें ठीक हैं किन्तु जहां उसने जीवन समस्या को हल करने का दावा किया, वहीं उस की ग़ल्तियां प्रगट होने लगती हैं। बड़े २ दार्शनिक तथा विद्वान् एक दूसरे का खण्डन करते रहते हैं। बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही पुस्तक में जीवन समस्या पर विचार करते हुवे स्वयं लेखक कई बार अपना खण्डन स्वयं कर देता है।

जब हम साइन्स के उन कामों पर दृष्टि डालते हैं, जिन का संबन्ध मानुषिक जीवन से नहीं है, या बहुत कम है, तो हम मनुष्य के मस्तिष्क की महत्ता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते; किन्तु जब हम इस बात पर पूर्णतया विचार करते हैं, कि जीवन की समस्या का किस प्रकार हल किया है, तो हम को अत्यन्त निराशा होती है।

वैज्ञानिक कहते हैं-"हम तुम्हें यह नहीं बता सकते कि तुम कौन हो और क्यों जीवित रहते हो? इन प्रश्नों पर हम विचार नहीं करते। हां! यदि तुम प्रकाश, शरीर-शास्त्र, मनोविज्ञान आदि के विषय में कुछ मालूम करना चाहो तो हम तुम को ठीक ठीक उत्तर दे सकते हैं। प्रयोगात्मक विज्ञान (Practical Sceince) का संबन्ध जीवन-समस्या से केवल इतना है कि वह यह बताता है कि असंख्य छोटे २ परमाणु असंख्य जटिल रीतियों से अपना रूप बदलते रहते हैं। जब तुम को उनके रूप बदलने का रहस्य मालूम हो जायगा, उस समय तुम को मालूम हो जायगा, कि तुम क्यों जीवित हो?"

मैं स्वयं पहिले कहा करता था-"मानुषिक-जीवन तथा उन्नति के कारण आध्यात्मिक हैं। इन आध्यात्मिक कारणों का प्रत्यक्षीकरण

... विकास में हो रहा है। धीरे २ मनुष्य कभी ऐसी उन्नति कर जायगा कि 'पूर्णता' को पहुंच जायगा। मैं स्वयं मनुष्य हूं। इस कारण मेरा धर्म है कि मैं संसार को इस सच्चाई का अनुभव करने में सहायता दूं।"

अपनी मानसिक निर्बलता के दिनों में मैं इस प्रकार की युक्तियों में विश्वास करता रहा। किन्तु ज्यों ही जीवन समस्या मेरे सम्मुख रहने लगी, इस युक्ति का अस्तित्व ही जाता रहा। इस युक्ति के पोषकों को थोड़े से प्राणियों का भी पूरा २ हाल मालूम नहीं है। किन्तु वे सारी दुनियां के कुलाबे बांधते हैं। इस के अतिरिक्त एक दूसरे का खण्डन करते रहते हैं। मैं क्या हूं? क्यों जीवित हूं? मुझे क्या करना चाहिये? —इन प्रश्नों का उत्तर देने के स्थान में सारे संसार के ठेकेदार बन जाते हैं और अजीब तरह का निरर्थक बातें करते हैं। यह एक आश्चर्य-जनक बात है कि मनुष्य को अपने जीवन को समझने के लिये अन्य सब प्राणियों के जीवन को पहिले समझना चाहिये और वे अन्य प्राणी भी मेरे समान अपने जीवन से अपरिचित हैं।

मैं इस बात को मानता हूं कि एक समय था जब इन युक्तियों पर विश्वास था और मैं समझता था कि संसार का जीवन इन युक्तियों के अनुसार ही व्यतीत हो रहा है। किन्तु कुछ दिनों बाद जब मेरी आंखें खुलीं तो मुझे मालूम हुआ कि साइन्स की बहुत सी शाखाएं ऐसी हैं कि जिनके दावे झूठे हैं। साधारण अन्वेषणों के आधार पर वैज्ञानिक सब बातों में टांग अड़ाते हैं और मनुष्यों को धोखा देते हैं।

किन्तु जिस प्रकार मनुष्य इस प्रश्न के उत्तर के लिये कि "मुझको किस प्रकार रहना चाहिये?" वैज्ञानिकों के उस

दिखावटी समाधान से सन्तुष्ट नहीं हो सकता कि वह अपरिमित अवधि में असंख्य परमाणुओं तथा उनके परिवर्त्तनों का अन्वेषण करे: इसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन-रहस्य को समझने के लिये संसार के अन्य प्राणियों के वृत्तान्त जानने में भी असमर्थ है।

छठा प्रकरण।

जीवन-समस्या को हल करने के प्रयत्न में मेरी वही दशा हुई जो किसी जंगल में खोये हुवे मनुष्य की होती है।

वह मैदान में पहुंचता है, वृक्ष की चोटी पर चढ़ता है और चारों ओर बहुत दूर तक देखता है किन्तु मालूम करता है कि उस का घर वहां नहीं है तथा वहां नहीं हो सकता। फिर वह अन्धकारमय जंगल में जाता है और अन्धकार देखता है। किन्तु वहां भी उसका घर नहीं है।

इसी प्रकार मैं भी मानुषिक ज्ञान रूपी जंगल में गुम हो गया। गणित शास्त्र तथा प्रयोगात्मक शास्त्रों की चमक में मुझे क्षितिज दीखता था, किन्तु ऐसी दिशा में जहां घर नहीं हो सकता था। दर्शन शास्त्र के अन्धकार में मैं जितना घुसता जाता था, उतना अन्धकार अधिक मालूम होता था और अन्त में मुझे पूर्ण रूप से विश्वास होगया कि न वहां से बाहर निकलने के लिये कोई रास्ता है और न हो सकता है। जब मैं ने धोखा देने

वाले ज्ञान के प्रकाश का पीछा किया तो मुझे मालूम होगया, कि मैं अपने प्रश्न से अधिक दूर होता जारहा हूं । यद्यपि ये शास्त्र बहुत ही ललचाने वाले थे, किन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर उन से कोसों दूर था ।

मैं अपने दिल में सोचता था, " विज्ञान जो कुछ जानने का प्रयत्न करता है मैं जानता हूं । किन्तु उस दिशा में मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है । " दर्शन शास्त्र में भी, यद्यपि इस शास्त्र का उद्देश्य मेरे प्रश्नों का उत्तर देना था, कुछ उत्तर न था । जो उत्तर मैं ने दे लिये थे वे ही यहां भी मिलते थे । मेरे जीवन का अर्थ क्या है ? ' 'कुछ नहीं ।' 'मेरे जीवन का क्या परिणाम होगा ?' 'कुछ नहीं ।' 'हम सब क्यों जीवित है ? मैं क्यों जीवित हूं ? 'क्यों कि हो ।'

मानुषिक ज्ञान की एक शाखा से मुझको बहुत से ऐसे प्रश्नों का उत्तर मिला जिन से मेरा कुछ सम्बन्ध न था । सितारों की बनावट के विषय में, सूर्य की गति के विषय में, मनुष्य तथा प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में, असंख्य छोटे २ वायवीय कणों के संगठन के विषय में । किन्तु इस प्रश्न का उत्तर कि ' जीवन क्या है, यही था कि तुम परमाणुओं के मेल से बने हो । इन परमाणुओं की पारस्परिक गति का नाम ही जीवन है । जब तक ये परमाणु गति करते रहेंगे-तुम जीवित रहोगे । जब इन परमाणुओं की गति बन्द होजायगी तो तुम्हारे जीवन का अन्त हो जायगा और उसी के साथ तुम्हारा प्रश्न भी ख़तम होजायगा । तुम किसी पदार्थ का छोटा टुकड़ा लो जिसका संगठन संयोग वश होगया है । इस टुकड़े में परिवर्तन होते रहते हैं । इन परिवर्तनों का नाम ही मनुष्यों ने ' जीवन ' रक्खा है । जब वे परमाणु, जिन से टुकड़े का संगठन होता है, पृथक् होजाते हैं तो उनके साथ जीवन तथा सब प्रश्नों की भी इति श्री होजाती है ।

विज्ञान इस समस्या का यह उत्तर देता है और अपने सिद्धान्तों पर पूर्णरूप से स्थिर रहने की दशा में यही उत्तर दे सकता है।

किन्तु यह उत्तर कोई उत्तर नहीं है। मैं तो यह जानना चाहता हू कि जीवन का क्या अर्थ है। इस उत्तर से कि मेरा जीवन असख्य छोटे २ कणों का संगठन है, मेरा प्रश्न हल नहीं होता।

विज्ञान की दूसरी शाखा अर्थात् विचारात्मक (Abstract) विज्ञान ने सदैव इस प्रश्न का यही उत्तर दिया है कि संसार अनन्त तथा अज्ञेय है। मानुषिक जीवन अज्ञेय पूर्ण (all) का एक अज्ञेय भाग है। विज्ञान की अन्य शाखायें जैसे जूरिसपुडैन्स (Jurisprudence) अर्थ शास्त्र तथा इतिहास भी मेरे प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हैं। दर्शन शास्त्र का वही उत्तर है जो सुकरात,शापनहार (Schopenhoner) सुलैमान (Solomon) तथा बुद्ध ने दिया है।

सुकरात ने मरते समय कहा था, "हम जीवन से जितने दूर होते जाते हैं, सत्य के उतने ही निकटतर होते जाते हैं। जो सत्य के प्रेमी हैं, वे क्या चाहते हैं? यही कि शरीर तथा शरीर के कारण होने वाले अन्य पापों से छुटकारा मिले। यदि यह बात ठीक है तो मृत्यु समय हम आह्लादित क्यों न हों? बुद्धिमान् मनुष्य आयु भर मृत्यु की खोज में रहता है और इस कारण मृत्यु उसके लिये भयानक नहीं है।"

शापनहार कहता है:—

संसार की स्थिति 'मनुष्य की विचार-शक्ति' (Will) पर निर्भर है। संसार के सारे पदार्थ —छोटे से लेकर बड़े तक— मनुष्य के 'विचार' के कारण हैं। अतः जहां विचार-शक्ति लुप्त हुई, संसार लुप्त होजाता है। किन्तु संसार का लुप्त होना मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध है क्योंकि मनुष्य में जीवित रहने की इच्छा

प्राकृतिक है। अतः उसकी 'इच्छा' (Will) कभी लुप्त नहीं होती। किन्तु हां ! जिन मनुष्यों में ' इच्छा ' (Will) का लोप होगया है, उनके लिये संसार-सब सूर्यों तथा नक्षत्रों सहित-न होने के समान है।

सुलेमान कहता है, " जीवन व्यर्थ है। मनुष्य जो संसार में परिश्रम करता है—उसका क्या परिणाम ? एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी आती है, किन्तु संसार सदैव रहता है। जो वस्तु पहिले थी आगे भी बराबर रहेगी तथा जो कुछ किया जा चुका है, आगे भी किया जायगा। संसार में कोई पदार्थ नूतन नहीं है। क्या कोई वस्तु ऐसी है जिसके विषय में कहा जा सके कि देखो यह चीज़ नई है। पहिली बातों को हमने बिलकुल भुला दिया है और भविष्य में होने वाली बातों को भी हम अवश्य भुला देंगे। "

मैं जरूसलम में इसराईल का बादशाह था। मैंने संसार की सब बातों की वास्तविकता मालूम करने का प्रयत्न किया। ईश्वर ने मनुष्यों के हृदयों में यह आकुलता उत्पन्न करदी है कि वे पदार्थों की वास्तविकता मालूम करने का प्रयत्न करें। मेरे प्रयत्न करने का परिणाम यह हुआ कि मुझे मालूम होगया कि संसार में व्याकुलता तथा दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

मैं ने अपने दिल से कहा कि मैं बड़ा धनी हूं तथा अब तक जरूसलम में जितने आदमी होचुके हैं उन सब से अधिक बुद्धिमान् हूं और मुझे अधिक ज्ञान है। किन्तु बाद में परिणाम यह निकला कि व्याकुलता के अतिरिक्त कुछ नहीं है क्यों कि जितना ज्ञान बढ़ेगा उतने ही दुःख भी बढ़ेंगे। जो मनुष्य अपना ज्ञान बढ़ाता है, अपने दुःख भी बढ़ाता है। तब मैंने अपने दिल में कहा कि मुझे आनन्द की सामग्री एकत्रित करली चाहिये और हंसी खुशी में जीवन व्यतीत करना चाहिये। मैंने मनोरञ्जन करने के विचार

से मद्यपान आरंभ किया। बड़े २ घर बनवाये। अंगूर की बेलें लगवाईं। मैं ने उद्यान लगवाये और उन में भिन्न २ प्रकार के फलों के वृक्ष लगवाये मैं ने पानी के तालाब बनवाये। बहुत से स्त्री-पुरुषों को नौकर रक्खा। जरूसलम में जितनी प्रकार के जानवर मिल सकते थे, उन सब को पाला। बहुतसा सोना चांदी इकट्ठा किया। मैं ने बहुत से गायक तथा गायकायें रक्खीं। गाने बजाने का सामान एकत्रित किया। इस प्रकार मैं बड़ा बन गया और अपने पूर्ववर्त्ती जरूसलम निवासियों से बाज़ी ले गया। मेरी बुद्धि भी ठीक थी। जो कुछ मेरी आंखें देखना चाहती थीं, मैं उन को दिखाता था। मेरे हृदय ने जिस आनन्द-भोग की इच्छा प्रगट की, मैं ने उसको उससे वञ्चित न रक्खा। किन्तु फिर मैं ने अपनी एकत्रित की हुई सामग्री पर गहरी दृष्टि डाली तो व्याकुलता तथा निरर्थकता के अतिरिक्त और कुछ प्रतीत न हुवा।

तब मैंने बुद्धिमानी, पागलपन तथा मूर्खता का मुकाबला किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सब का परिणाम एक ही है। मैं ने अपने दिल में सोचा कि जब मूर्ख मनुष्य का और मेरा एक ही परीणाम होगा तो फिर मैं उससे अधिक बुद्धिमान् किस प्रकार हूं। जिस प्रकार संसार मूर्खों को भुला देता है, उसी प्रकार बुद्धिमानों को भी सदैव याद नहीं रखता। जो चीज़ आज है, अवश्य किसी न किसी दिन भूली जायेगी। जिस प्रकार मूर्ख मरता है उसी प्रकार बुद्धिमान भी मरता है। इस कारण मुझे जीवन से घृणा हो गई क्यों कि संसार में जितने पदार्थ है सब कष्ट प्रद हैं। जो सामग्री मैं ने एकत्रित की थी मुझे इस कारण बुरी मालूम देने लगी कि मुझे उसको अपने अनुवर्ती के लिये छोड़ना पड़ेगा।

मनुष्य जो परिश्रम और कष्ट उठाता है उसका उसको क्या परिणाम मिलता हैं ? सारा दिन अशांति में व्यतीत होता है और रात को भी चैन नहीं मिलता। प्रत्यक्ष में मनुष्य के लिये इस से अच्छी और कोई बात नहीं है कि वह खावे पीवे और अपने परिश्रम से आनंद उठावे। सब का परिणाम एक ही है। अच्छे बुरे तथा पवित्र अपवित्र मनुष्य का एक ही परिणाम है। जो मनुष्य कुर्बानी करता है तथा जो मनुष्य कुर्बानी नहीं करता, अच्छे कर्म करने वाला तथा पापी, शपथ खाने वाला तथा शपथ खाने से डरने वाला —सब समान हैं। सूर्य के नीचे जितने कार्य होते हैं उन मे यह बड़ा दोष है कि सब का परिणाम एक ही होता है। मनुष्यों के हृदय पाप पूर्ण हैं। जीवन में वे उन्माद से भरे रहते हैं तथा बाद में परलोक की राह लेते है। जो मनुष्य जीवित हैं उन के लिये आशा बाकी है क्यों कि जीवित कुत्ता मृत सिंह से अच्छा है। जीवित मनुष्य जानते हैं कि वे मरेंगे, किन्तु मुर्दे कुछ भी नहीं जानते। न उन्हें किसी प्रकार के पारितोषक ही की इच्छा होती है क्योंकि वे अपने कामो को ही भूल जाते हैं। उन के लिये प्रेम, घृणा तथा ईर्षा नष्ट हो जाती हैं और संसार में जो कुछ होता है उस में उनका भाग नहीं रहता।

उपरोक्त विचार सुलेमान (Solomon) के हैं। अब एक भारतीय महात्मा के विचार सुनिये:—

एक दिन शाक्य मुनि, जो कि एक युवा तथा प्रसन्न-चित्त राजकुमार था तथा जिस को रोग, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के अस्तित्व से अपरिचित रक्खा गया था, हवा खाने के लिये जा रहा था। उस की दृष्टि एक ऐसे वृद्ध मनुष्य पर पड़ी जिसके मुंह में दांत न थे राजकुमार वृद्धावस्था से अपरिचित रक्खा

गया थी, इस कारण बहुत आश्चर्यान्वित हुआ। उस ने अपने कोचवान से पूछा कि यह मनुष्य ऐसी बुरी दशा में क्यों है? कोचवान ने उत्तर दिया कि सब मनुष्यों का यही परिणाम होता है। आप को भी बुढ़ापे का कष्ट भोगना पड़ेगा। इस उत्तर का राजकुमार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह हवा खोरी के लिये न जा सका और उसने लौटने की आज्ञा दी जिस से कि वह इस समस्या पर विचार कर सके। उसने एकान्त में जाकर कुछ देर तक सोचा और किसी प्रकार अपनी शान्ति करली। एक दिन फिर हवा खाने गया। इस बार उसे एक रोगी मनुष्य मिला। राजकुमार एक ऐसे मनुष्य को देख कर आश्चर्यान्वित हुवा जिस के हाथ पाव लड़खड़ाते थे, जिस की अवलोकन शक्ति जाती रही थी तथा जिस का मुख नीला पड़ गया था। राजकुमार ने गाड़ी ठहरादी और पूछा कि इस का क्या कारण है? उत्तर मिला, कि बीमारी ही के कारण यह मनुष्य इस दशा को पहुचा है। सब मनुष्य बीमार पड़ सकते हैं। सम्भव है कि राजकुमार भी जो इस समय स्वस्थ तथा प्रसन्न चित्त है, कल ही को बीमार पड़ जाये और उस में भी कुछ ऐसा ही परिवर्तन हो जाये। राजकुमार का चित्त फिर उचाट हुवा और वह घर आया। उसने फि विचार किया और संभवतः शान्त होगया। फिर तीसरी बार हवा खाने गया। इस समय उसने एक नया दृश्य देखा। उसने देखा कि कुछ आदमी कोई चीज़ ले जारहे हैं। उसने पूछा," यह क्या है?" उत्तर मिला," यह एक मृत मनुष्य है?" राजकुमार ने पूछा," मृत का क्या अर्थ है? उत्तर मिला कि इसी मनुष्य के समान होजाना। राजकुमार लाश के निकट गया और उसको खोल कर देखा। देख कर राजकुमार ने पूछा, "अब इस का क्या होगा?" उस को बताया गया कि लाश

को ज़मीन में गाड़ दिया जायगा। "क्यों?" "क्योंकि अब यह फिर जीवित नहीं हो सकता और बाहर रहने से बदबू उठेगी और कीड़े पैदा होंगे।" "क्या सब मनुष्यों का यही परिणाम होता है? क्या मेरा भी यही परिणाम होगा? क्या मुझ को भी लोग गाड़ देंगे? क्या मुझ से भी बदबू फैलेगी? क्या मुझे भी कीड़े खालेंगे?" "हां"। "अच्छा तो घर चलो। मैं अब मनोविनोद के लिये नहीं जाऊंगा और भविष्य में फिर कभी इस प्रकार हवा खोरी न करूंगा।"

शाक्य मुनि को जीवन से शांति न मिल सकी। उसने निर्णय कर लिया कि जीवन दुःख मय है और यथाशक्ति इस प्रकार का प्रयत्न किया कि मेरी तथा दूसरों की आत्मा शरीर के बन्धन से मुक्त होजाय तथा मृत्यु के अनन्तर भी आत्मा फिर शरीर के बन्धन में न पड़े और जीवन की जड़ ही कट जाये। भारतवर्ष के अन्य महात्माओं ने भी इसी प्रकार के विचार प्रगट किये हैं।

सुक़रात (Socrates) कहता है कि जीवन दुःखमय तथा निरर्थक है। इस कारण जीवन को नष्ट करने के प्रयत्न से अच्छी और कोई बात नहीं है।

शापनहार (Schopenhaur) कहता है कि जीवन बुराई की जड़ है और उस को पूरे तौर पर खो देने का प्रबन्ध करना चाहिये।

सुलैमान कहता है कि जो कुछ संसार में है—मूर्खता तथा बुद्धिमानी, अमीरी तथा ग़रीबी, सुख तथा दुःख—सब मिथ्या है। मनुष्य मर जाता है और कुछ बाक़ी नहीं रहता।

गौतमबुद्ध कहता है कि इस बात को जानते हुवे—कि हम को कष्ट सहने पड़ेंगे, हम कमजोर होंगे, तथा बूढे होंगे और

मरेंगे—जीवित रहने की इच्छा रखना असम्भव है। हम को यथा संभव जीवन से मुक्त होना चाहिये।'

जिन बातों को इन मेधावी मनुष्यों ने कहा है, उन्हीं बातों को उन के समान लाखों मनुष्यों ने भी विचार कर अनुभव किया है। मैंने भी विचार किया है और इसी प्रकार अनुभव किया है।

अतएव विज्ञान शास्त्रों के मैदानों में सैर करने से मेरी अशान्ति घटने के स्थान में बढ़ी। एक ओर तो मुझे जीवन समस्या का बिल्कुल उत्तर न मिला और दूसरी ओर ऐसा स्पष्ट उत्तर मिला कि जिस से प्रमाणित हो गया कि जिस परिणाम पर मैं पहुंचा हूं उसी परिणाम पर संसार के अनेक मेधावी मनुष्य भी पहुंचे हैं। मेरे विचार करने में कोई भूल न थी तथा मेरे मस्तिष्क में किसी प्रकार का विकार न था।

अपने आप को धोखा देने से कोई लाभ नहीं है। सब मिथ्या है। वही खुश है जो पैदा नहीं हुआ है। जीने से मृत्यु अच्छी है। इस कारण हम को जीवन से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये।
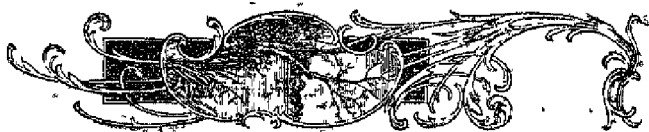
सातवां प्रकरण।
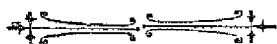
जब शास्त्रों से मेरे प्रश्न का उत्तर न मिला तो मैं मानुषिक जीवन से उत्तर प्राप्त करने की खोज में रहने लगा। मैं ने अपने चारों ओर के मनुष्यों पर यह मालूम करने के लिये दृष्टि डाली कि उनके रहन सहन का ढंग क्या है तथा वे उस प्रश्न को, जिसने मेरे हृदय मे ा उत्पन्न करदी है, किस दृष्टि से देखते हैं। अपनी कोटि के ें की दशा जो मैंने देखी तो मुझे मालूम हुवा कि उनके सहन के चार ढंग हैं। प्रथम तो वे मनुष्य हैं जो जीवन-ा से सर्वथा अपरिचित हैं तथा विना सोचे समझे जीवन त किये जाते है। इस प्रकार के मनुष्यों और विशेषतया स्त्रियों के मस्तिष्क में वह प्रश्न, जो शापनहार (Schopen-), सुलेमान तथा बुद्ध के सामने था, कभी नहीं आता। न तो यमदूत ही दीखता है और न वे चूहे जो उस वृक्ष की

जड़ को, जिस की शाखा वे पकड़े हुये हैं, काट रहे हैं। वे केवल शहद की बूँदें चखते हैं। किन्तु ज्यों ही उनकी दृष्टि भयंकर जानवर तथा चूहों की ओर जाती है, उनके होश उड़ जाते हैं तथा शहद का मज़ा भूल जाते हैं। इसके बाद उन के जीवन का आनन्द समाप्त हो जाता है।

दूसरे वे मनुष्य हैं जो एपीक्यूरियन (Epicurean) रीति पर जीवन व्यतीत करते हैं अर्थात् प्रत्येक ऐसी बात की ओर जिस में उन्हें आनन्द अनुभव होता है आकर्षित हो जाते हैं तथा दुःखप्रद चीज़ों से बचते हैं। वे भयंकर जानवरों तथा चूहों से बचते हैं और जितना भी शहद मिल सके उस के खाने की खोज में रहते हैं। सुलेमान लिखता है कि कभी मेरा भी यही विचार था कि जीवन व्यतीत करने की इस से अच्छी दूसरी रीति नहीं है। अतएव मैं भी यही कहा करता था कि संसार में खाने पीने तथा आनन्द से रहने के सदृश और कोई पदार्थ नहीं है। मनुष्य को अपनी स्त्री से खूब प्रेम करना चाहिये। प्रत्येक कार्य को, जो वह करे, यथा संभव परिश्रम से करना चाहिये, क्योंकि क़ब्र में न तो कोई कार्य शेष रहता है और न बुद्धि, श्रम अथवा विद्या का अस्तित्व शेष रहता है। इस रीति पर मेरी कोटि के बहुत से मनुष्य जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे मनुष्यों ने इस बात को विस्मरण कर दिया है कि जो आनन्द तथा सुख उन्हें प्राप्त है वह केवल संयोगवश है। सब मनुष्य सुलेमान नहीं हो सकते। यदि एक ओर एक मनुष्य के पास सहस्र स्त्रियें हैं तो दूसरी ओर ऐसे मनुष्य भी हैं जिन के पास एक भी स्त्री नहीं है। प्रत्येक मनुष्य सहस्रों मनुष्यों के पसीने से तैयार होता है। संभव है कि जो मनुष्य आज सुलेमान है, कल इस योग्य हो जाय कि सुलेमान का दास बने। इन मनुष्यों की मानसिक अयोग्यता उन का ध्यान उन बातों की ओर नहीं जाने देती, जिन के कारण गौतम बुद्ध

की शांति जाती रही थी। वे नहीं सोचते कि रोग, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के कारण यदि 'आज' नहीं तो 'कल' उन के सारे सुखों का अन्त हो जायगा। किन्तु मैं इस प्रकार के मनुष्यों से इस बात में भिन्न हूं कि उन के समान मेरा मस्तिष्क शुष्क नहीं है। मैं अस्वाभाविक रूप से अपनी मानसिक गति को नहीं रोक सकता। जब मुझे एक बार भयङ्कर जानवर तथा चूहे दृष्टिगोचर होगये तो मैं अपनी आंखों पर किस प्रकार पट्टा बांध सकता हूं। मैं वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्यु से बेखबर नहीं होसकता था। आत्म-हत्या मुझे सब से अच्छी मालूम पड़ती थी, किन्तु इतना साहस न था कि अपनी जान अपने हाथों लूं। यह बात जानते हुवे भी कि जीवन एक बड़ी बेहूदा दिल्लगी है जो प्रकृति ने जीवधारियों के साथ की है, मैं स्नान करता, कपड़े पहनता, बोलता, चलता, शराब पीता तथा पुस्तकें लिखता रहा। मुझे अब मालूम होता है कि आत्म-हत्या मैं ने इस कारण से नहीं की कि मेरे दिल में कभी२ यह संदेह उत्पन्न हो जाता था कि जीवन-समस्या के समझने में थोड़ी सी भूल रह गई है। मेरी बुद्धि मुझ से कहती थी कि जीवन व्यर्थ है। किन्तु मुझे विचार ही जीवन का कारण मालूम हुवे। मैं बड़ा चक्कर में था कि मेरे विचार ही मुझ से यह कहते हैं कि जीवन निरर्थक है तथा मेरे विचार ही जीवन का कारण प्रतीत होते हैं। अतएव मुझे अपने समझने में कुछ भूल मालूम देती थी। मैं सोचता था—'यदि जीवन इतना निरर्थक है, जैसा मैंने समझ रक्खा है, तो मृत्यु से अधिक सुगम अन्य कोई वस्तु नहीं है तथा जीवित रहने वाले मनुष्यों से अधिक मूर्ख और कोई नहीं है। क्या शापनहार (Schopenhaur) तथा मैं—केवल दो व्यक्ति ही—संसार के सब मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। क्या संसार ग़लती पर है?

तीसरी रीति पर केवल वे मनुष्य चलते हैं जिनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों में किसी प्रकार का विकार नहीं आया है तथा जो दृढ़-हृदय हैं। ऐसे मनुष्यों को जब मालूम होजाता है कि जीवन निस्सार है और दुःखों से भरा हुआ है तथा जीवन से मृत्यु अच्छी है तो तत्काल रस्सी, पानी, चाकू या रेलवे ट्रेन की सहायता से अपने जीवन का अन्त कर लेते हैं। मेरी कोटि के मनुष्यों में इस प्रकार से आत्म-हत्या करने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। आत्म-हत्या करने वाले बहुधा युवक होते हैं जिनकी सारी शक्तियां वास्तविक दशा पर होती हैं। मुझे भी सब से अच्छी यही रीति मालूम हुई और मैं इसके अनुसार काम करने पर तत्पर होगया।

चौथी रीति दुर्बल प्रकृति वालों की है। इस रीति के अनुसार जीवन व्यतीत करने वालों को जीवन के सब दोष मालूम होते हैं किन्तु उन में इतना साहस नहीं होता कि वे आत्म हत्या करलें। अतएव वे इस आशा पर जीवन व्यतीत करते रहते हैं कि स्यात् कोई सुधार की सूरत निकल आवे। जब हमको जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने का उपाय मालूम है तो हमको उसे कार्य रूप में परिणत करना चाहिये। किन्तु मैं स्वयं इस प्रकार के मनुष्यों में था। जीवन व्यतीत करने की यही चार रीतियां हैं। इनके अतिरिक्त और कोई पांचवीं रीति मुझे मालूम नहीं है। मैं उन मनुष्यों में नहीं हूं जो जीवन के दोष जानते हुये भी उनकी ओर से आंखों पर पट्टी बांध लेते हैं। न उन मनुष्यों में से हूं जो दिखावटी तथा ऊपरी सुखों के कारण अन्धे होजाते हैं। जीवित रहने की मूर्खता मालूम करना एक सुगम कार्य है तथा साधारण से साधारण मनुष्य इसको जान सकता है। फिर भी करोड़ों मनुष्य जीवित रहे चले आते हैं और उन्हें जीवन में कोई त्रुटि नहीं मालूम होती

मुझे ज्ञानोपार्जन तथा बड़े २ विद्वानों से मालूम हुआ कि संसार में प्रकृति ने प्रत्येक बात नियम के अनुसार बनाई है और यह मेरी मूर्खता है कि मुझे प्रत्येक वस्तु बुरी मालूम होती है। किन्तु संसार में असंख्य मूर्ख ऐसे हैं कि उन्हें किसी वस्तु के अस्तित्व अथवा अभाव का पता नहीं है और उनको जीवन में कोई अड़चन नहीं मालूम होती।

मैं ने सोचा कि सम्भव है कि कोई भेद मेरे समझने में न आया हो। साधारण नियम है कि मनुष्य जब किसी वस्तु से परिचित नहीं होता तो उसे बुरी या बेहूदा समझता है। सारांश यह है कि साधारणतया मनुष्य संसार में इस प्रकार रहे चले जाते हैं कि मानो संसार की सब बातों से परिचित हैं। केवल मैं ही यह कहता हूं कि जीवन निस्सार है। मेरी समझ में नहीं आता कि जीवन किस प्रकार व्यतीत करूं? हमको आत्म-हत्या करने से कोई नहीं रोक सकता। अतएव यदि जीवन अरुचिकर है तो आत्म-हत्या कर लेनी चाहिये। इस प्रकार सब सन्देह दूर हो जायेंगे और फिर विवाद करने या लिखने या वक्तृता देने का कोई अवसर न रहेगा। मैं ऐसी संगति में था जिसमें मेरे अतिरिक्त सब मनुष्य प्रसन्न थे तथा अपनी दशा से सन्तुष्ट थे। मैं इन निर्बल प्रत्युत मूर्ख मनुष्यों में से था जिनको आत्महत्या की आवश्यकता तो अनुभव होती है किन्तु हार्दिक निर्बलता के कारण अपनी जान नहीं ले सकते। जिस प्रकार कोई मूर्ख मनुष्य अपनी टोपी पर अपना नाम लिख ले, इसी प्रकार ऐसे मूर्ख मनुष्य अपनी मूर्खता अपने साथ लिये फिरते हैं।

हमारी बुद्धि ने कभी हमको जीवन की आवश्यकता का विश्वास नहीं दिलाया। किन्तु करोड़ों मनुष्य जो जीवित रहते हैं समझते हैं कि जीवन का कुछ सार है तथा जीवित रहने की आवश्यकता है। इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं है कि संसार के

आरम्भ से अब तक मनुष्यों ने जीवन-समस्या के विषय में भिन्न२ विचार स्थिर किये हैं और इसी तरह से वह अब तक रहते चले आते हैं। मैं अपने चारों ओर जो कुछ देखता हूं वह मेरे पूर्ववर्त्ती मनुष्यों के ज्ञान तथा खोज का परिणाम है। मेरी मानसिक शक्ति, जो मैं ने जीवन के निरर्थक प्रमाणित करने में व्यय की है, वह भी मेरे पूर्ववर्त्ती मनुष्यों के विचारों तथा खोजों का परिणाम है। मेरी उत्पत्ति तथा पोषण भी उन्हीं के कारण हुआ है। उन्हों ने ही पृथ्वी से लोहा निकाला तथा जंगलों का काटना सिखाया। उन्होंने ही गायों और और घोड़ों को पालतू बनाया। उन्हों ने ही बीज बोना सिखाया। उन्हों ने ही एक दूसरे के साथ रहने का नियम बनाया। मेरी विचार शक्ति भी उन्हीं की दी हुई है। मैं उन्हीं का पैदा किया हुआ हूं तथा उन्हीं का शिष्य हूं। किन्तु फिर भी मैं ने यह प्रमाणित कर दिया कि मेरे पूर्ववर्त्ती मनुष्यों का जीवन बिल्कुल निरर्थक था। मुझे ध्यान आया कि अवश्य मेरे समझने में कहीं न कहीं भूल है। किन्तु मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता था कि भूल किस स्थान पर हुई है।
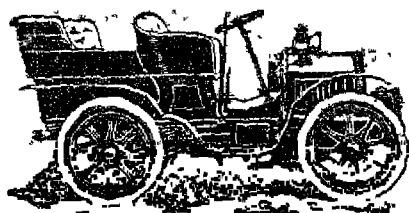
आठवां प्रकरण ।

सब शङ्कायें जिनको मैं अब साफ़ तौर पर बता सकता हूं उस समय अच्छी तरह नहीं बता सकता था। मैं अनुभव करता था यद्यपि मुझे जीवन निरर्थक प्रमाणित हो चुका है तथा संसार के महा-पुरुष भी इस बात का समर्थन करते हैं, फिर भी मेरी बहस में कुछ भूल है। मैं नहीं जानता था कि परिणाम में भूल है या प्रश्न ही ठीक नहीं है। यद्यपि युक्तियां ठीक मालूम देती थीं, किन्तु कभी २ हृदय कि वे पर्याप्त नहीं हैं। मेरी युक्तियों ने कभी मुझे इतना ीं किया कि मैं आत्म-हत्या कर डालता। वास्तविक कि युक्तियों के अतिरिक्त भी कोई वस्तु मेरे अन्दर ना काम कर रही थी। उसी शक्ति ने मेरे विचारों में कर दिया। इस शक्ति के कारण मेरे मस्तिष्क में यह त्पन्न हो गया कि संसार केवल मुझ से, या मेरे समान

अन्य सहस्रों मनुष्यों ही से नहीं बना है तथा मैं मानुषिक जीवन की समस्या से अपरिचित हूं।

जब मैं उस परिमित श्रेणी के लोगों पर, जो मेरी कोटि के थे, दृष्टि डालता था तो या तो मुझे उस प्रकार के मनुष्य मिलते थे जिन्होंने जीवन-समस्या को बिल्कुल नहीं समझा था या वे मिलते थे जो दिन रात भोग विलास में लिप्त रहते थे अथवा ऐसे मनुष्य मिलते थे जिन्होंने या तो आत्म-हत्या करली थी या अपनी निर्बलता के कारण आत्म-हत्या तो नहीं कर सकते थे किन्तु जैसे तैसे दिन काट रहे थे। इसके अतिरिक्त मैंने अन्य मनुष्यों का अनुभव नहीं किया। एक समय था जब मैं सोचा करता था कि शिक्षित, धनवान तथा आलसी मनुष्यों के अतिरिक्त संसार में जानवरों को छोड़ कर अन्य प्रकार के प्राणधारी नहीं रहते हैं।

चाहे यह बात कितनी ही आश्चर्य जनक, असम्भव तथा बेहूदा क्यों न मालूम हो किन्तु एक समय था जब मैं सोचा करता था कि सुलेमान, शापनहार तथा मेरा जीवन ही मान के के योग्य है तथा अन्य मनुष्यों के जीवन का मुझ से कोई संबन्ध नहीं है। मुझे अपने विद्याबल तथा मानसिक शक्ति पर इतना गर्व था कि मेरी समझ में न आता था कि सुलैमान, शापनहार तथा मेरे अतिरिक्त अन्य प्रकार के मनुष्यों ने भी कभी जीवन-समस्या अपने लिए हल की होगी। मेरा ध्यान कभी उन असंख्य मनुष्यों की ओर नहीं गया जो संसार में सदैव से रहते चले आये हैं या अब रह रहे हैं।

मैं बहुत दिनों तक ऐसी भूल करता रहा जो मेरी कोटि या योग्यता के मनुष्य बहुधा किया करते हैं। किन्तु धन्यवाद है कि मेहनती लोगों से मुझे हार्दिक प्रेम था। इस कारण से या इस

कारण से कि आत्म-हत्या के अतिरिक्त मेरे विचार किसी और ओर नहीं जाते थे, मुझे ध्यान हुआ कि मेहनत करने वालों को जो मैंने मूर्ख समझ रक्खा है, वह मेरी भूल है।

यदि जीवन-समस्या हल करनी है तो उन लोगों के जीवन पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये जो आत्म हत्या पर उतारू रहते हैं, प्रत्युत् उन लोगों के जीवन को देखना चाहिये जिन्हों ने अपने जीवन को जीने के योग्य बना रक्खा है तथा हमारे जीवन का भी बोझ उठा रक्खा है। अतएव मैं इन असंख्य परलोकवासी तथा जीवित मनुष्यों के जीवन पर विचार करने लगा। मुझे अपनी भूल मालूम हुई, क्योंकि मैं ने इस प्रकार के मनुष्यों को बिल्कुल भुला दिया था। मानुषिक जीवन के मैंने जो चार विभाग कर रक्खे थे, उन में से किसी के भी अन्तर्गत ये मेहनती लोग नहीं आसकते थे। ये लोग न तो उन्हीं में से थे जो जीवन समस्या को नहीं समझते हैं क्यों कि इन लोगों के पास इस प्रश्न का पर्याप्त उत्तर था। न ये उन्हीं लोगों में से थे जिन्हें भोग विलास के अतिरिक्त और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती क्यों कि उनका जीवन आपत्तियों से खाली नहीं था। न ये उन्हीं लोगों में से थे जो अपनी इच्छा के विरुद्ध जीते रहते चले जाते हैं क्योंकि उन्हों ने अपने जीवन के प्रत्येक काम का—यहां तक कि मौत तक का-भी अर्थ समझ रक्खा था। आत्म-हत्या को तो ये लोग महा पाप समझते थे। ऐसा मालूम हुआ कि उन मनुष्यों ने जीवन के जो अर्थ समझ रक्खे थे उस की ओर मैंने ध्यान नहीं दिया था प्रत्युत् घृणा की दृष्टि से देखा था।

वास्तविक बात यह मालूम हुई कि केवल बुद्धि जीवन-समस्या को हल करने में असमर्थ है तथा जो मनुष्य बिना किसी युक्ति के परिश्रम का जीवन व्यतीत किये जाते हैं, वे जीवन-समस्या को समझे हुए हैं

अब विश्वास या ईमान का प्रश्न उठता है। ये लोग ईश्वर तसलीस तथा छः दिन में संसार की उत्पत्ति मानने वाले थे अर्थात् वे सब बातें, जिन्हें मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती थी, मानते थे। अब मेरी दशा और भी अवर्णनीय हो गई। युक्तियों तथा बुद्धि से तो यह प्रमाणित हुआ कि जीवन निरर्थक है तथा उन लोगों के विश्वासों तथा ईमान से प्रगट हुआ कि जीवन-समस्या हल करने में बुद्धि का बहुत ही कम प्रवेश है। अतएव अपने जीवन को जीने योग्य बनाने के लिए मुझे अपने पथ-प्रदर्शक अर्थात् बुद्धि को अलग उठा कर रख देना चाहिये।
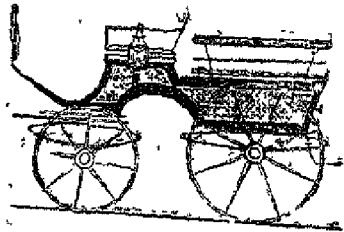
नवां प्रकरण ।

मैं एक अद्भुत झंझट में फंस गया । मुझे दो बातें मालूम हुई । एक तो यह कि जिस बातको मैंने बिल्कुल ठीक समझ रक्खा था वह बिल्कुल ठीक नहीं थी । दूसरी यह कि जिस बातको मैंने बिल्कुल गलत समझ रक्खा था उस में भी कुछ सच्चाई अवश्य थी । अतएव मैं सोचने लगा कि मैं किस प्रकार इस परिणाम पर पहुंचा हूं ।

मुझ को अपनी विचार प्रणाली बिल्कुल ठीक मालूम हुई । यह बात तो प्रगट ही थी कि जीवन तुच्छ है, किन्तु मुझे इस में एक भूल मालूम हुई । वह भूल यह थी कि मैंने अपने विचारों को प्रश्न तक ही परिमित नहीं रक्खा । प्रश्न यह था कि "मुझे क्यों जीवित रहना चाहिये ? मेरे विनाशी जीवन में कोई वस्तु अविनाशी है या नहीं ? मेरा परिमित जीवन अपरिमित संसार में क्या अर्थ रखता है ?" मैंने इन प्रश्नों का उत्तर जीवन के अनुभवों से देना चाहा ।

मुझे मालूम हुआ कि जीवन समस्या विषयक किसी प्रश्न के उत्तर से भी मेरी शान्ति नहीं हो सकती । जीवन की ये ऐसी समस्यायें हैं कि इन के समझने के लिये सकल संसार के समझने की आवश्यकता है । मैंने अपने दिल से प्रश्न किया— "समय, कारण तथा स्थान के अतिरिक्त मेरे जीवन का क्या आशय है ? " बहुत कुछ परिश्रम तथा सोच विचार के बाद उत्तर मिला—" कुछ नहीं । "

अपनी तमाम तर्कनाओं तथा सोच विचार के पश्चात् यही प्रमाणित हुआ कि परिमित परिमित है, अपरिमित अपरिमित है, शक्ति शक्ति है, एक एक के बराबर है, शून्य शून्य के बराबर है अर्थात् वही बात है जो गणित शास्त्र में है । एक समान वस्तुएं एक समान प्रमाणित हो जाती हैं ।

'डेस्कार्टीज़' (Descartes) के अनुसार अन्वेषण करने से पूर्व हम को कोई सिद्धान्त नहीं बना लेना चाहिये । प्रत्येक अन्वेषण में अनुभव तथा बुद्धि से काम लेना चाहिये । अतएव इसी दार्शनिक के अनुसार जीवन समस्या के प्रश्न का पूर्ण उत्तर नहीं मिल सकता ।

पहिले मेरा विचार था कि विज्ञान से पूर्ण उत्तर मिल सकता है जैसा कि शापनहार (Schopenhaur) ने दिया है अर्थात् जीवन निरर्थक तथा निस्सार है । जब मैंने इस उत्तर पर विचार किया तो मुझे मालूम हुआ कि यह उत्तर यथेष्ट नहीं है तथा मेरी तबीयत के झुकाव के कारण है । ब्राह्मणों, सुलेमान तथा शापनहार का एक ही उत्तर है । दर्शन किसी वस्तु का खण्डन नहीं करता । उस का यही उत्तर है कि जीवन समस्या पूर्णरूप से हल नहीं हो सकती । जब मैं उस परिणाम पर पहुंच गया तो मेरी समझ में आया कि जब तक 'इस प्रश्न में कुछ परिवर्तन न किया जाय,

अर्थात् परिमित तथा अपरिमित के सम्बन्धों को सम्मिलित न किया जाय–इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान से नहीं मिल सकता। मेरी समझ में यह भी आ गया कि विश्वास या ईमान के उत्तर कितने ही झूठे क्यों न हों, उन से परिमित तथा अपरिमित में एक प्रकार का सम्बन्ध स्थिर होता है।

मुझ को किस प्रकार रहना चाहिये? इस प्रश्न को मैं किसी रूप में क्यों न करूं, मुझे एक ही उत्तर मिलता है–"ईश्वरीय नियमों के अनुसार।" "क्या मेरे जीवन का कुछ परिणाम होगा।" उत्तर मिलता है—"निरन्तर शान्ति या कष्ट।" "क्या जीवन में कोई ऐसा पदार्थ है जो मृत्यु से नष्ट नहीं होगा?" उत्तर मिलता है—"ईश्वर में लय हो जाना या स्वर्ग।" इस प्रकार मैं इस बात को मानने पर विवश हुआ कि मानुषिक जीवन में बुद्धि के अतिरिक्त विश्वास का भी प्रवेश है तथा इस विश्वास के कारण ही जीवन जीवित रहने योग्य बन सकता है। यद्यपि अब भी मैं विश्वास या ईमान को मूर्खता की बात समझता रहा, किन्तु विवश होके कहना पड़ा कि बिना विश्वास के जीवन निरर्थक तथा निस्सार है।

जब विज्ञान की युक्तियों से मुझे प्रमाणित हुवा कि जीवन निरर्थक है तथा मुझे आत्म-हत्या कर लेनी चाहिये तो उस समय भी मुझ में जीवन था। जब मैंने अपने चारों ओर मनुष्यों को जीवित रहते देखा और मुझे प्रगट हुवा कि वे जीवन-समस्या को समझे हुवे हैं तो मुझे विश्वास हुवा कि विश्वास से ही जीवन संभव है।

मैंने जीवन का अनुभव अपने ही देश में नहीं किया वरन् अन्य देशों में भी। मैंने आधुनिक काल के मनुष्यों को प्राचीन काल के मनुष्यों से मिलाया तो मालूम हुआ कि संसार के आरम्भ से अब

तक जहां जीवन है वहां विश्वास भी उसी के साथ २ चला आया है तथा मानुषिक विश्वास प्रत्येक देश मे एक दूसरे से थोड़े बहुत मिलते जुलते हैं।

भिन्न २ विश्वासों से किसी मनुष्य को कुछ ही उत्तर क्यों न मिले किन्तु प्रत्येक उत्तर परिमित जीवन को अपरिमित रूप देता है तथा कष्ट, निर्धनता और मृत्यु पर जीवन की विजय का डङ्का बजाता है। अतएव विश्वास मे ही जीवन की जड़ है। तो फिर विश्वास क्या है? विश्वास का केवल यह अर्थ नहीं है कि बिना देखे हुवे किसी वस्तु को मान लिया जाय। न बिना तर्क किये हुए प्रत्येक वस्तु के मान लेने का नाम विश्वास है। जीवन समस्या को समझ लेने का नाम विश्वास है। जिस के कारण मनुष्य आत्म-हत्या नहीं करता वरन् जीवित रहता है। विश्वास जीवन की आत्मा है। यदि मनुष्य जीवित है तो वह अवश्य किसी वस्तु मे विश्वास करता है। यदि उसे किसी वस्तु मे भी विश्वास न होता तो वह जीवित न रहता। यदि उसे परिमितता मे न्यूनता अनुभव नहीं होती तो वह अवश्य परिमितता में विश्वास करता है। यदि उसे परिमितता में न्यूनता अनुभव होती है तो वह अवश्य अपरिमित पर विश्वास लाता है।

सारांश यह कि बिना विश्वास लाये जीवन असम्भव है। अब मैंने अपने मस्तिष्क तथा बुद्धि की गत दशा पर दृष्टि डाली तो बड़ा भय मालूम हुआ। मुझे भली भांति प्रगट होगया कि जीवित रहने के लिये या तो अपरिमित की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है ही नहीं या अपरिमित तथा परिमित का पारस्परिक सम्बन्ध समझ लेना चाहिये। आरम्भ में मेरा विश्वास परिमितता में था। इस कारण मेरे पहिले प्रयोग भ्रमात्मक प्रमाणित हुवे। किन्तु एक समय वह आया कि परिमितता में मेरा विश्वास नहीं रहा। जब मैंने अपरिमित पर विचार किया तो मुझे वही प्रमाणित हुवा जो संसार के बड़े बुद्धिमानों को प्रमाणित हुआ था अर्थात् शून्य के बराबर है।

जब मैंने अपने प्रश्न का उत्तर विज्ञान से मांगा था, तो यह भूल हुई थी कि मैं ने आत्मा को छोड़ कर संसार की बाहरी वस्तुओं पर दृष्टि डाली थी। परिणाम वही हुआ जो होना चाहिये था अर्थात् यद्यपि मुझे बहुत सी असम्बन्धी बातें मालूम होगईं किन्तु वास्तविक प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

जब मैं ने अपने प्रश्न का उत्तर दर्शन शास्त्र से मांगा तो अपने समान बहुत से मनुष्यों के विचार मालूम किये। किन्तु मेरे समान इनके पास भी इस प्रश्न का—कि जीवन क्या वस्तु है? कोई उत्तर नहीं था। अतएव मुझे कोई भी नई बात नहीं मालूम हुई तथा मैं ने यही परिणाम निश्चित किया कि इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता। "मैं क्या हूं?" "असंख्य अणुओं का संमिश्रण।" इन कतिपय शब्दों में सारी समस्या तय हो जाती है।

क्या यह बात थी कि मनुष्य अब ही ऐसे प्रश्न करने लगा है? क्या यह सम्भव था कि मुझसे पहिले किसी दूसरे मनुष्य ने ऐसा साधारण प्रश्न, जो एक समझदार बच्चा भी कर सकता है, न किया हो?

जब से संसार स्थिर है, यह प्रश्न भी अवश्य मौजूद है तथा यह भी निश्चित हो चुका है कि प्रश्न का पूर्ण उत्तर कोई नहीं है चाहे परिमित की परिमित से तुलना की जाय, चाहे अपरिमित की अपरिमित से, चाहे परिमित की अपरिमित से।

'अपरिमित तथा परिमित', 'जीवन तथा ईश्वर', 'स्वतन्त्रता तथा नेकी' के सब विचारों को जब हम तर्क के प्रकाश में देखते हैं तो हमारी बुद्धि प्रमाण देने में असमर्थ रहती है।

यह बहुत ही उपदेशप्रद बात है, नहीं तो हम भी बच्चों के समान अपनी घड़ियों की कमानियां निकाल कर उनके खिलौने

बना लेते और आश्चर्य करते कि वे अब समय क्यों नहीं बतातीं।

अपरिमित तथा परिमित के भेदों का निर्णय, जिससे प्रगट कि जीवन क्या पदार्थ है, हमको आवश्यक ही नहीं है वरन् अत्यन्त प्रिय है। उसका केवल एक ही उत्तर है जो प्रत्येक समय तथा प्रत्येक काल में तथा प्रत्येक जाति के मनुष्यों में मिल सक्ता है तथा अपरिवर्तित रूप में बराबर पूर्ववत् चला आता है। इस प्रश्न का उत्तर हम इकले नहीं दे सकते। हम इस उत्तर को मूर्खता से अपने हाथ से खो देते हैं और वही प्रश्न कर बैठते हैं जिस का उत्तर कोई नहीं दे सकता। ईश्वर की अपरिमितता आत्मा की पवित्रता, सृष्टा तथा सृष्टि के सम्बन्ध, नेकी व बदी की पहिचान—ये ऐसी बातें हैं जो मनुष्य जाति की बहुत सी शाखाओं ने प्रमाणित करदी हैं। मैंने मनुष्य जाति की शाखाओं के अन्वेषणों की ओर ध्यान न दिया और अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाने पर तैयार हो गया।

इस समय मेरे ऐसे विचार न थे जिन से मुझे शान्ति प्राप्त हुई है, किन्तु उन विचारों के छोटे २ कीड़े (Germs) मेरे अन्दर मौजूद थे। मैं समझता हू कि शापनहार सुलमान तथा मैंने जो बहस उठाई थी ग़लत थी। क्योंकि यदि जीवन निरर्थक था तो हम को तत्काल मर जाना चाहिये था। मैं समझता हूं कि हमारी सब युक्तियां एक घेरे के अन्दर घूमती थीं। हम इस के अतिरिक्त कि शून्य शून्य के बराबर है, और कुछ प्रमाणित नहीं कर सकते थे। मै समझता हूं कि जो उत्तर विश्वास से मिलता है, वही उत्तर ठीक है। उसी में सब से अधिक बुद्धिमानी है। उसी से जीवन-समस्या हल होती है। उस के खण्डन करने के लिये मेरे पास कोई युक्ति-संगत कारण नहीं है।

दसवाँ प्रकरण ।

कुछ मैं पहिले बता चुका हूं सब समझता था, किन्तु मेरा दिल अभी तक हल्का नहीं हुआ था। मैं प्रत्येक धर्म को, जिसने बुद्धि को खूंटी पर टांग कर न रख दिया हो, मानने के लिये तैयार था, क्योंकि बुद्धि के विपरीत कार्य करना भी उचित न था।

सब से पहिले ईसाई धर्म के अनुयायियों अर्थात् रियों, पादरियों तथा नये ईसाइयों की ओर गया ईसा पर विश्वास लाने से मुक्ति मिल सकती है। नये ईसाइयों की ओर ध्यान दिया और उनसे नों के विषय में प्रश्न किये, किन्तु उन लोगों का समझ में नहीं आया। मैंने देखा कि जिस बात को धर्म निश्चित कर रक्खा था उससे जीवन-समस्या न पैदा होती है तथा उन्हों ने अपना धर्म जीवन

समस्या को सुलझाने के लिये निश्चित नहीं किया था वरन् किसी और ही कारण से जिससे मैं अपरिचित था।

मुझे याद है कि इन लोगों से मिलने के कारण मुझे जो आशायें बन्ध गई थीं, उनके पूरा न होने से मुझे कितनी अधिक निराशा हुई थी।

जितनी अधिक बारीकी के साथ उन लोगों ने मुझे अपने सिद्धान्त समझाये उतना ही मेरा पक्का विचार होगया कि उनके सिद्धान्तों से जीवन-समस्या हल नहीं हो सकती।

इन लोगों ने ईसाई धर्म की सच्चाई में, जो मुझे बहुत प्यारी थी, बहुत सी व्यर्थ की बातें मिला रक्खी थीं। किन्तु मुझे इनसे इस कारण घृणा नहीं हुई। घृणा का कारण यह था कि उनके कहने और करने में बड़ा भेद था मुझे अनुभव हुवा कि उन लोगों ने अपने आप को धोका दे रक्खा था तथा उनका और मेरा एक ही उद्देश्य था अर्थात् संसार में जो कुछ प्राप्त हो सके उसे अधिकार में करना चाहिये। यदि उन्हों ने जीवन समस्या हल करली होती तो उन को मेरे समान दुःख निर्धनता तथा मृत्यु से भय नहीं मालूम होता। किन्तु मेरे समान वे केवल इन कष्टों से भयभीत हो नहीं थे। वरन् सांसारिक भोग विलास की सामग्री एकत्रित करने पर तुले हुए थे। मेरे तथा अन्य काफ़िरों के समान विषय वासनाओं के दास बने हुवे थे।

किसी युक्ति से भी मुझे इन मनुष्यों के विश्वासों की सच्चाई में विश्वास नहीं हो सकता था। मेरी तुष्टि केवल उन कामों से ही हो सकती थी जिनसे निर्धनता, रोग या मृत्यु की बे परवाही प्रगट होती। ऐसे कर्म मैंने उन मे नहीं पाये। हां! इस प्रकार के कर्म अपने पन्थ के काफ़िरों में तो देखने मे आये किन्तु धर्माचारियों में बिल्कुल नहीं

तब मेरी समझ में आया कि मैं जिन विश्वासों की खोज में हूं वे ये विश्वास नहीं हैं। इन लोगों के दिखावटी विश्वासों को धर्म का नाम देना ही अधर्म है क्योंकि ये लोग तो इस धुन में हैं कि जिस तरह हो आराम से जीवन व्यतीत हो। मैं समझता था कि यदि इन लोगों के विश्वास मे मनुष्यों की पूरी तुष्टि नहीं होगी तो कम से कम सुलैमान के इन हृदय विदारक शब्दों से, जो उसने अन्तिम समय में कहे थे, अवश्य उत्तर मिलेगा। किन्तु यह भी संभव नहीं था। सुलैमान, शापनहार तथा मैंने इसी कारण आत्म-हत्या नहीं की थी, क्योंकि हमारे दिलों में कोई शक्ति कह रही थी कि विश्वास (ईमान) कोई वस्तु अवश्य है नहीं तो संसार अब तक कैसे जीवित रहता तथा अपने साथ मुझ को और सुलैमान को किस प्रकार ले चलता।

मैं अब निर्धनों साधारण मनुष्यों, किसानों, यात्रियों तथा साधुओं की संगति में रहने लगा। धर्माचार्यों के दिखावटी विश्वासों के समान इन लोगों के विश्वास भी ईसाई धर्म के थे। इन लोगों के विश्वासों मे भी सच्चाई और झूठ दोनों मिले हुवे थे, किन्तु भेद यह था कि धर्माचार्यों के विश्वासों तथा कार्यों मे भेद था परन्तु इन लोगों के विश्वासो तथा कार्यों मे कुछ भेद न था। धर्माचार्य कहते कुछ और करते कुछ और थे, किन्तु वे लोग जो कहते थे वही करते थे।

इस प्रकार मैं इन लोगों के विश्वास तथा रहन सहन के ढंग से परिचित होगया। ज्यूं २ मेरा परिचय बढ़ता जाता था मेरा विश्वास होता जाता था कि वास्तव में इनके विश्वास ठीक हैं तथा उन्होंने जीवन-समस्या को हल कर लिया है। मेरी श्रेणी के मनुष्यों में स्यात् सहस्र मे एक मनुष्य कठिनता से ऐसा मिलेगा जो धर्म हीन न हो। इसके

विपरीत निर्धन तथा मेहनती लोगों में एक भी काफ़िर न मिलेगा। अपनी श्रेणी के मनुष्यों में मैंने आलस्य, भोग विलास तथा अशान्ति पाई। इसके विरुद्ध उन लोगों को मैंने परिश्रम तथा सन्तोष के साथ जीवन व्यतीत करते देखा। अपनी श्रेणी के लोगों को मैंने कष्ट तथा आपदाओं के कारण विकल देखा। किन्तु इस के विपरीत उन लोगों को रोग तथा शोक को इस विश्वास के साथ झेलते देखा कि जो कुछ हो रहा है हमारे अच्छे के लिए हो रहा है। मेरी श्रेणी के मनुष्यों का विचार है कि विद्या-प्राप्ति के बिना जीवन-समस्या हल नहीं होती। इस के विपरीत मैंने उन लोगों को प्रसन्नता के साथ जीवित रहते, कष्ट उठाते तथा मरते देखा। मेरी श्रेणी के मनुष्यों में कोई विरला ही शान्ति के साथ प्राण त्यागता है, किन्तु इन लोगों में कोई विरला ही मृत्यु के समय विकलता प्रगट करता है। यद्यपि उन लोगों के पास हमारे या सुलैमान के समान धन-सम्पति नहीं हैं, फिर भी वे कभी निधनता के कारण चिन्तित नहीं रहते। मैंने बहुत ध्यान से देखा तथा भिन्न २ देशों के मेहनती लोगों के जीवन पर गहरी दृष्टि डाली तो मुझे प्रमाणित हुआ कि उनमे दो, तीन या दस बीस ने नहीं वरन् सहस्त्रों तथा करोड़ों मनुष्यों ने जीवन-समस्या को ऐसी भली भांति समझा है कि उन्हें जन्म तथा मृत्यु अनुभव तक नहीं होते। यद्यपि इन लोगों की मानसिक शक्तियों, आचार व्यवहारों तथा शिक्षा-प्रणालियों में बहुत भेद है, किन्तु जीवन-समस्या से ये लोग ऐसे परिचित हैं कि वे जन्म, मृत्यु तथा दु:ख को निरर्थक पदार्थ नहीं समझते वरन् अपने लिये अच्छा ही समझते हैं।

इन लोगों से मेरा प्रेम बढ़ गया। ज्यूं २ इन के जीवन से मेरा परिचय—चाहे स्वयं देखने के कारण या पुस्तकावलोकन

द्वारा—बढ़ता गया, मैं उन पर अधिक आसक्त होता गया। मैं ने इस रीति पर दो वर्ष जीवन व्यतीत किया। इसके पश्चात् ऐसा परिवर्तन हुआ जिस के लिए मैं बहुत दिनों से तैयार हो रहा था। अब मुझे धनवान् तथा शिक्षित मनुष्यों के जीवन से घृणा हो गई। अब मुझे अपने काम, अपनी युक्तियां तथा विज्ञान शास्त्र बच्चों का खेल मालूम देने लगा। मेरे मस्तिष्क में यह बात अच्छी तरह जम गई कि इन बातों से जीवन-समस्या हल नहीं हो सकती। मेहनती लोगो के जीवन की—विशेषतया उन लोगों के जीवन की जो अपने जीवन के लिये स्वयं ही सामग्री प्राप्त करते हैं—वास्तविकता मुझे मालूम हो गई। मै समझ गया कि यही वास्तविक जीवन है। इस का जो कुछ परिणाम होगा वह भी ठीक है। अतएव मैंने इसी जीवन को स्वीकार किया।
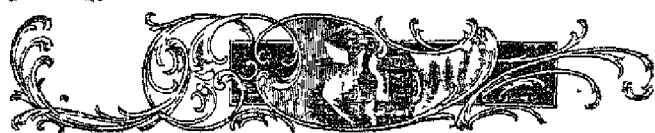
संसार में शराब पीने के अतिरिक्त किसी और काम की ओर ध्यान न दिया हो—पूछा जाय कि जीवन क्या है तो केवल वही उत्तर मिल सकता है जो किसी ऐसे पागल आदमी से मिलेगा जिसने अपने आपको किसी अन्धेरे कमरे में बन्द कर रक्खा हो तथा घर से बाहर निकलने ही में अपनी मौत समझ रक्खी हो, अर्थात् जीवन बहुत बुरी वस्तु है।

यह उत्तर उस मनुष्य के लिये जिसने दिया है बिल्कुल ठीक है। मेरी दशा भी पागलों से अच्छी न थी। क्या जितने धनवान, चालाक तथा आलसी थे मेरे ही समान पागल थे? मैं समझता हूं कि सम्भवतः थे। कम से कम मैं अवश्य था। पक्षियों को देखिये। वे उड़ने, दाना चुगने तथा अपना घोंसला बनाने के लिये जीवित रहते हैं। उनको देखकर हम प्रसन्न होते हैं। बकरी, खरगोश, भेड़िये बच्चे पैदा करने तथा उनका पालन पोषण करने के लिये जीवित रहते हैं। जब मैं उनको देखता हूं तो मुझे प्रसन्नता होती है। मैं समझता हूं कि उनका जीवन निरर्थक नहीं है। तो फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये? उस को भी जानवरों के समान अपने खाने पीने की सामग्री एकत्रित करनी चाहिये, किन्तु इस भेद के साथ कि उसको केवल अपने ही लिये परिश्रम नहीं करना चाहिये प्रत्युत् सब के लिये; क्यों यदि वह इकलखोरी पर कमर बांधेगा तो नष्ट होजायगा। जब मनुष्य सबके लिये परिश्रम करता है तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि वह प्रसन्न होता है। उसका जीवन सार्थक है। मैं ने अपनी तीस वर्ष की आयु में क्या किया? मैं ने न तो कुछ औरों के लिये किया न अपने लिये। मैंने उस कीड़े के समान जीवन व्यतीत किया जो दूसरे कीड़ों को खाकर जीता है। अतएव जीवन-समस्या मेरी समझ में नहीं आई। यदि मनुष्य-जीवन का यह उद्देश्य है कि वह स्वयं अपने लिये जीवन सामग्री एकत्रित करे तो मेरा तीस वर्ष का जीवन, जिस में मैंने

अपने तथा दूसरों के जीवन के नष्ट करने का प्रयत्न किया, किस प्रकार अच्छा कहा जा सकता है ? अवश्य वह निरर्थक तथा दूषित था ।

संसार का जीवन किसी की इच्छा के अनुसार चल रहा है। किसी ने हमारा तथा संसार का जीवन चलाना अपना परम धर्म समझ रक्खा है। यदि हम उस शक्ति या इच्छा को समझने की आशा रखते हैं तो हम को प्रथम उस के अनुसार कार्य करना चाहिये। जब तक मैं उन आदेशों का, जो मुझ को दिये गये हैं, पालन नहीं करूंगा, मेरी समझ में नहीं आसकता कि वह शक्ति या इच्छा क्या है ? उस के तथा समस्त संसार के संबन्ध के समझने की तो बात ही दूसरी है। यदि किसी भूखे नंगे भिखारी को हम सड़क के किनारे पर से पकड़ कर किसी बन्द मकान में, जहां बहुत से आदमी काम कर रहे हों, इस लिये लेजायें कि उस के खाने पीने का यथेष्ट प्रबन्ध होजाय और उस से कहें कि मैशीन के हत्थे को ऊपर नीचे हिलाते रहो तो उस का कर्तव्य है कि बिना कारण पूंछे हुये पहिले वह आज्ञा का पालन करे। यदि वह आज्ञा का पालन करेगा तो थोड़ी देर बाद उसे स्वयं ही मालूम हो जायगा कि मैशीन द्वारा कुंवे से पानी निकलता है और पानी भूमि में दिया जाता है। फिर उस को कुंवे से हटा कर किसी दूसरे काम पर लगाया जायगा और उस से वृक्षों से फल चुनने का काम लिया जायगा। जब छोटे २ कामों से हटाया जाकर वह बड़े २ कामों पर लगाया जायगा तब उस की समझ में कारखाने का प्रबन्ध आजायगा और वह बिना पूंछे अपने स्वामी को बुरा भला न कह कर अपना काम स्वयं करने लगेगा।

ठीक यही दशा उन मनुष्यों की है जो अपने स्वामी की आज्ञाओं का पालन करते हैं। सीधे सादे मनुष्य, जिन्हें हम पशु समझते हैं, कभी अपने स्वामी की शिकायत नहीं करते किन्तु

हम लोग, जो बुद्धिमान होने का दावा करते हैं, अपने स्वामी का माल खाते हैं और उस की आज्ञा का पालन नहीं करते।

हम लोग एक चक्र बना कर बैठ जाते हैं और बहस करने लगते हैं कि हम को हत्था क्यों हिलाना चाहिये? यह तो मूर्खता का काम मालूम देता है। जब बहस कर चुकते हैं तो किस परिणाम पर पहुंचते हैं? केवल इस पर—"या तो स्वामी मूर्ख है या है ही नहीं।" हम स्वयं बुद्धिमान् बनते हैं किन्तु हम से कोई काम नहीं हो सकता।
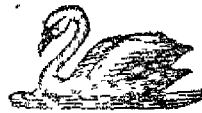
बारहवां प्रकरण।

मेरे इस विश्वास ने, कि केवल युक्तियों से जीवन-समस्या हल नहीं हो सकती, मेरी बड़ी सहायता की। जब मुझे यह प्रमाणित हो गया कि जीवन-समस्या सदाचार द्वारा प्राप्त हो सकती है तो मैंने अपने जीवन को उस के विरुद्ध पाया। किन्तु जब अपनी श्रेणी के लोगों से दृष्टि हटा कर मैंने मेहनती लोगों के जीवन पर विचार किया तो मुझे असली और नकली जीवन का भेद मालूम हो गया। मेरी समझ में आ गया कि यदि मुझको जीवन की वास्तविकता समझने की आवश्यकता है तो मुझ को उसी प्रकार रहना चाहिये जिस प्रकार संसार की जन संख्या का एक बहुत बड़ा भाग रहता है।

जिन दिनों का मैं वर्णन कर रहा हूं, उन दिनों मेरी यह दशा थी कि एक वर्ष तक लगातार इस असमञ्जस में रहा कि मुझे अपना काम रस्सी या पिस्तौल से तमाम कर लेना चाहिये था

नहीं ? किन्तु मेरे हृदय में बराबर एक प्रकार की हूक उठती रही जिस को मैं ईश्वर की खोज के अतिरिक्त और कोई नाम नहीं दे सकता ।

यह ईश्वर की खोज मेरी बुद्धि का काम न था, किन्तु हृदय का था । असली बात तो यह है कि मेरी बुद्धि तथा हृदय में बराबर परस्पर विरोध रहा । मुझे कभी २ ऐसा भय मालूम होता था जैसा संसार में असहाय किसी अनाथ बालक या इकले मनुष्य को होता है । किन्तु इसके साथ २ मुझे किसी से सहायता की आशा भी थी । किन्तु यह मैं नही कह सकता था कि मेरी सहायता कौन करेगा ? यद्यपि मुझे यह भली भांति प्रमाणित होचुका था कि ईश्वर के अस्तित्व को कोई मनुष्य प्रमाणित नहीं कर सकता; तत्ववेत्ता (Kant) ने मेरे इस विचार को और भी पुष्ट कर दिया था, किन्तु फिर भी पुराने स्वभाव के कारण मैं ईश्वर से प्रार्थना किया करता था । किन्तु मैं जिसकी खोज में था वह मुझे न मिला ।

कभी मैं अपने दिल में कान्ट (Kant) तथा (Schopenhauer) की युक्तियों पर विचार किया करता था कि ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होसकता । कभी उनकी युक्तियों को काटने लगता था ।

मैं अपने दिल में कहा करता था कि 'विचार', 'स्थान' तथा 'समय' से 'कारण' पृथक् पदार्थ है । यदि मैं हूं, तो मेरे अस्तित्व का कोई कारण अवश्य है । यदि संसार है तो संसार का कारण अवश्य है और इस कारण का नाम ही ईश्वर है । मैंने इस कारण अर्थात् ईश्वर के मालूम करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया ।

जब मैं अनुभव करता था कि मैं किसी के आधीन हूं तो मुझे अपना जीवन सुगम मालूम होने लगता था उस समय मेरे दिल

में ये विचार उठते थे:—

यह कारण था शक्ति क्या पदार्थ है ? मै उसको किस प्रकार अनुभव कर सकता हूं । उसका और मेरा क्या सम्बन्ध है ? वही पुराना जवाब बार २ मस्तिष्क में आता था:—वह सबका पैदा करनेवाला तथा संहार करने वाला है। इस उत्तर से मेरी शांति नहीं होती थी और मुझे मालूम होता था कि मेरे जीवन का आधार मुझे धोखा देरहा है। मुझे बड़ा डर मालूम होता था और मैं निराशा की दशा मे प्रार्थना किया करता था कि—अय ईश्वर मेरी सहायता कर। किन्तु जितनी अधिक प्रार्थना करता था उतनी ही अधिक यह बात प्रत्यक्ष होती जाती थी कि मेरी सुनाई नहीं होती और न कोई सुनने वाला ही है। अत्यन्त निराशा की दशा में चिल्लाया करता था—"अय ईश्वर मुझ पर दया कर और मुझे बचा।" किन्तु मेरी दशा पर किसी को भी दया न आई।

बार २ मुझे ध्यान आता था कि मैं संसार मे बिना किसी कारण के नहीं आया हूं। मैं कोई ऐसा जानवर नहीं हूं कि बिना किसी कारण के घोंसले से गिर पड़ा हूं। यह अवश्य है कि मैं उस जानवर के समान, जो घास में पीठ के बल पड़ा हुआ अपने हाथ पांव पीटता है, चिल्ला रहा हूं। किन्तु यह भी इसी कारण से है कि मैं जानता हूं कि मुझे एक मां ने पैदा किया है, पाला है, खाना खिलाया है, और प्यार किया है। वह मां कहां है ? यदि मुझे फेंका है तो किस लिये ? मैं इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच सकता था कि जिसने मुझे प्यार किया है, उसीने मुझे पैदा भी किया है। वह कौन है ? फिर वही उत्तर आता है—'ईश्वर'। वह मेरी खोज, मेरी निराशा तथा मेरी दशा जानता है और देख रहा है। मैं ने अपने दिल में कहा—"वह है अवश्य।" यह कहते ही मेरे शरीर में एक प्रकार के नये जीवन का सञ्चार होगया। तत्पश्चात् मैं ने अपने और उसके सम्बन्ध का विचार किया और

मैंने ईश्वर और उसके बेटे के विषय में सोचा तो मुझे मालूम हुआ कि यह विचार बनावटी तथा असम्बद्ध है। इस प्रकार का ईश्वर मेरी दृष्टि से इस प्रकार ओझल होगया जिस प्रकार का बर्फ़ का डला घुल जाता है। फिर मेरे जीवन का श्रोत शुष्क होगया। मैं फिर एक बार निराशा का शिकार होगया और मुझे प्रतीत हुआ कि आत्म-हत्या के अतिरिक्त मेरे पास और कोई साधन नहीं है।

किन्तु इससे अधिक ख़राबी की बात यह थी कि मेरा दिल मुझ से कहता था कि ऐसा काम कभी न करना।

मेरे विचारों में इस प्रकार के परिवर्तन एक या दो बार ही नहीं हुवे, वरन् सैकड़ों बार। कभी मैं हर्ष तथा आवेग का शिकार बन जाता था और कभी निराशा तथा भय का।

मुझे याद है कि वसन्त ऋतु में एक दिन प्रातःकाल के समय मुझे जंगल के वृक्षों के हिलने की आवाज़ आई। मेरे दिल में फिर वही विचार पैदा होगया जो दो वर्ष पहिले से था अर्थात् यह कि मैं ईश्वर की खोज में हूं।

मैं ने अपने दिल में कहा—"यह अच्छी बात है कि ईश्वर नहीं है। प्रत्युत् यों कहना चाहिये कि मेरे विचार के अतिरिक्त ईश्वर कोई पदार्थ नहीं है। मेरे जीवन के समान इसका अस्तित्व नहीं है। कोई पदार्थ या मौजज़ा यह बात प्रमाणित करके नहीं दिखा सकता कि ईश्वर है। स्वयं मौजज़ा ही अज्ञान का दूसरा नाम है।"

फिर मैंने सोचा—"जिस ईश्वर की मैं खोज में हूं, उसका विचार बार बार मेरे दिल में कहां से आता है?" इस प्रश्न के साथ ही मेरे शरीर में जान पड़ गई और चारों ओर की वस्तुएं सुहावनी मालूम पड़ने लगीं। मेरे इस हर्ष को स्थिरता न थी क्योंकि इसी समय मुझे ध्यान आया कि ईश्वर का विचार ईश्वर

नहीं हो सकता। विचार मेरे आधीन है। मैं जिस वस्तु के विषय मे चाहूं सोच सकता हूं। फिर मुझे संसार असार मालूम होने लगा और आत्म-हत्या का विचार किया।

इसके बाद मैं सोचने लगा कि जब मैंने ईश्वर का विचार किया तब ही जीवन मुझको प्रिय मालूम हुआ और जब मैंने उस को भुलाया तो मानो मौत आगई। ये निराशा तथा हर्ष लौट२ कर क्यों आते थे? जिस समय मैं ईश्वर के अस्तित्व से विश्वास उठा लेता हूं तो जीवित नहीं रहता, यदि ईश्वर के पाने की आशा की एक हल्की झलक मेरे अन्दर न होती तो मैंने कभी की आत्म-हत्या करली होती। वास्तविकता यह है कि जब तक मैं उसकी खोज में रहता हूं, जीवित रहता हूं।

'अब और किस की खोज है?' मेरे अन्दर से आवाज़ आई कि जिस चीज़ के बिना जीवन नहीं रह सकता वही ईश्वर है। ईश्वर को जानना और जीवित रहना एक ही बात है। ईश्वर जीवन है।

ईश्वर की खोज में जीवन व्यतीत करो। क्योंकि ईश्वर के बिना जीवन कहां है? जब यह विचार दृढ़ हो गया तो मुझ को इस प्रकार की शक्ति तथा प्रकाश ने घेर लिया कि फिर जीवन-पर्यन्त वे मेरे साथ रहे।

मैं इस प्रकार आत्म-हत्या से बचा। मुझ में यह परिवर्तन कब और किस प्रकार हुआ?—मैं नहीं कह सकता। जिस प्रकार धीरे २ निराशा बढ़ी थी तथा आत्म-हत्या का विचार रहता था, उसी प्रकार धीरे धीरे मुझ में प्रकाश तथा शक्ति फिर आ गई।

यह कुछ आश्चर्य की बात थी। किन्तु ये प्रकाश तथा शक्ति कोई नई वस्तु नहीं थी, क्योंकि इसी प्रकाश तथा शक्ति ने जीवन के आरम्भिक भाग में मेरी सहायता की थी। यह समझ लीजिये

कि मानो मेरे बचपन तथा जवानी फिर वापिस आ गये। मेरे दिल में पुराने विश्वास फिर आये और कहा कि मेरा कोई पैदा करने वाला है जिसके आदेशों का पालन करना मेरा धर्म है। मेरे जीवन का उद्देश्य यह होना चाहिये कि मैं नेक बनूं अर्थात् ईश्वर के आदेशों के अनुसार जीवन व्यतीत करूं। ईश्वर की आज्ञाओं का संग्रह उन आदेशों में है जो मनुष्य जाति ने अपने जीवन को व्यतीत करने के लिये सहस्रों वर्ष के प्रयत्न के पश्चात् निर्धारित किये हैं। दूसरे शब्दों में मैं ईश्वर के अस्तित्व तथा पुराने विश्वासों का मानने वाला हो गया। भेद केवल इतना था कि पहिले मैंने बिना जाने हुए इन बातों को मान लिया था किन्तु अब मेरा विश्वास हो गया कि इन सच्चाइयों पर ईमान लाये बिना जीवित रहना असम्भव है। उस समय की मेरे मस्तिष्क की दशा का अनुमान इस बात से हो सकता है कि मुझ को मालूम होता था कि मैं अचानक किसी नाव में बैठा दिया गया हूं जो किसी ऐसे किनारे से, जिसका मुझे ज्ञान नहीं है, हटा दी गई है। मुझे दूसरी ओर का किनारा दिखा दिया है तथा नाव खेने की लकड़ियां हाथ में दे कर अकेला छोड़ दिया है। मैं यथा-शक्ति इन लकड़ियों से काम लेता हूं किन्तु ज्यूं २ नदी के बीच में पहुंचता जाता हूं, नदी का पानी ज़ोर मारता जाता है। मैं अपनी तरह और बहुत से लोगों को नाव में बैठा हुआ देखता हूं। कहीं कहीं लोग मुझे नाव में इकले बैठे हुये तथा बहुत ज़ोर लगाते हुये मिलते हैं। कतिपय ऐसे भी मिलते हैं जिन्हों ने तंग आ कर बल्ली को हाथ से डाल दिया है। बहुत सी बड़ी २ नावें तथा बड़े २ जहाज़ मिलते हैं जिन में बहुत से आदमी सवार हैं। कुछ नदी के बहाव की ओर तथा कुछ उस के विरुद्ध जा रहे हैं। मैं जितनी दूर बढ़ता जाता हूं उस मार्ग को, जो मुझे बता दिया गया था, भूलता जाता हूं नदी के बीच में जहां चारों ओर से

मुझे अन्य नौकायें घेरे हुवे हैं, मैं बिल्कुल भूल जाता हूं कि मुझे किधर जाना है। अत्यन्त निराशा की दशा में मैं लकड़ियों को हाथ से छोड़ देता हूं। चारों ओर से अन्य नौकाओं के प्रसन्न वदन खेने वाले मुझ को आवाज़ देते हैं कि अन्य कोई मार्ग नहीं हो सकता। मैं उन का विश्वास कर लेता हूं और बढ़ा चला जाता हूं। मैं दूर तक चला जाता हूं और मुझे नौकाओं के डूबने की आवाज़ आती है। थोड़ी देर बाद जब मेरे होश हवास फिर कुछ ठीक होते हैं तो मुझे मालूम होता है कि क्या हुवा? मुझे नष्ट होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। मैं उसी ओर शीघ्रता से चला जाता हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं। पीछे फिर कर जब देखता हूं तो मुझे असंख्य नौकायें तूफान का सामना करती हुई दीखती हैं। अब मुझे तट, मार्ग तथा बल्लियों का ध्यान आता है और मैं शीघ्रता से किनारे तक पहुंचने का प्रयत्न करता हूं।

किनारा ईश्वर है, मार्ग विश्वास है तथा मनुष्य की इच्छा-शक्ति (True Will) बल्ली है। इस प्रकार मुझ में फिर जान आगई और मैं जीवित रहने लगा।
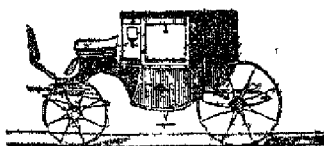
तेरहवां प्रकरण ।

मैं ने अपनी श्रेणी के लोगों का जीवन छोड़ दिया क्योंकि मैं पहिले कह चुका हूं कि उन का जीवन भोग विलास का जीवन था, वास्तविक जीवन नहीं । मैं ने मज़दूर लोगों के जीवन का अनुसरण आरम्भ किया क्योंकि उन्ही के जीवन से संसार का जीवन था । मेरा रूस के आदमियों ही से काम पड़ा है, क्योंकि मेरे चारों ओर वे ही लोग थे । जीवन का जो अर्थ उन्हो ने समझा है, उस का मैं यहां पर वर्णन करता हूं:—

हम सब लोग संसार में ईश्वर की इच्छा से आये हैं । ईश्वर ने मनुष्यों को स्वतन्त्र बनाया है । उन्हें अपनी आत्मा को सुधारने या बिगाड़ने का अधिकार है । मानुषिक जीवन का उद्देश्य आत्मा को पवित्र रखना है । ऐसा करने के लिये आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर की इच्छा के अनुसार काम करे । ईश्वर के आदेशों का पालने जब ही हो सकता है जब मनुष्य भोग विलास

छोड़ कर परिश्रमी, नम्र, उदार तथा कष्ट सहने वाला बने। परिश्रमी लोग जीवन-समस्या का यही अर्थ समझे हुवे है। उन के पादरी तथा उन में प्रचलित कथा कहानिये भी इसी अर्थ का पोषण करती है। जीवन के ये अर्थ मुझे बहुत साफ और प्यारे मालूम हुवे। इसी धर्म तथा विश्वास में मेरी श्रेणी के लोगों ने बहुत सी ऐसी झूंठी बातें सम्मिलित करली हैं जो मुझे रुचिकर नहीं हैं किन्तु साथ ही साथ पृथक् भी नहीं की जा सकतीं; उदाहरणतः व्रत रखना या प्रतिमाओं के सामने झुकना आदि। यद्यपि मुझे परिश्रमी लोगों के विश्वासों में भी बहुत सी बातें अद्भुत मालूम दीं, किन्तु मैंने उन की प्रत्येक बात को मान लिया तथा प्रति दिन गिरजा जाने लगा। सायं प्रातः प्रार्थना करने लगा तथा व्रत रखने लगा। मेरे हृदय ने पहिली बार मुझ से कहा कि इन बातों में एक भी आक्षेप योग्य नहीं है। जो बातें पहिले असम्भव प्रतीत होती थीं, अब अच्छी मालूम होने लगीं।

धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध मे मेरे जो विचार पहिले थे अब उन मे बिल्कुल परिवर्तन हो गया। पहिले मै समझता था कि विश्वास ऐसी बात का नाम है जिस को बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती तथा जिनका जीवन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। पहिले मैने कुछ विश्वासों का अर्थ समझने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वे मेरी समझ में न आये तो मैंने बिल्कुल उनका ध्यान ही छोड़ दिया। इस के विरुद्ध अब मेरा विचार है कि विश्वासों के बिना जीवन असम्भव है तथा विश्वास ही से जीवन-समस्या हल हो सकती है। पहिले में समझता था कि विश्वास व्यर्थ है। अब मैं उन का पूरा २ अर्थ तो नहीं समझता हूं, किन्तु जानता हूं कि उन में कुछ वास्तविकता अवश्य है और उसी वास्तविकता की खोज मे हूं।

मैंने अपने हृदय में इस प्रकार वाद विवाद किया। विश्वास भी मनुष्य तथा उस की बुद्धि के समान ईश्वर का पैदा किया हुवा है। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर ईश्वर का बनाया हुवा है, इसी प्रकार उस की बुद्धि भी ईश्वर की बनाई हुई है। निस्सन्देह जो मनुष्य के सच्चे विचार हैं वे अवश्य ठीक हैं। यह अवश्य है कि भिन्न २ मनुष्य अपने विश्वासों को भिन्न २ प्रकार से प्रगट करते हैं। यदि मुझे उन में कुछ भ्रम मालूम देता है, तो समझ लेना चाहिये कि मेरी बुद्धि वहां तक नही पहुंची है।

मैंने सोचा कि विश्वास पर चलने के ये अर्थ हैं कि जीवन की समस्या हल हो जाय। सच्चा ईमान वह है जो बादशाह के प्रश्न का—जो मृत्यु के समय भी प्रत्येक प्रकार की भोग विलास की सामग्री से घिरा रहता है-किसी बुड्ढे तथा मेहनती गुलाम के प्रश्न का, अज्ञान बच्चे के प्रश्न का, सफ़ेद बालों वाले तत्ववेत्ता के प्रश्न का, सठियाई हुई बुड्ढी औरत के प्रश्न का, यौवन भरी युवा स्त्री के प्रश्न का कि मैं क्यों जीवित हूं तथा मेरे जीवन का क्या परिणाम होगा, एक ही उत्तर दे सके। यद्यपि इस प्रश्न के उत्तर, मनुष्यों की परिस्थितियों के कारण, प्रगट मे कुछ २ भिन्न हों; किन्तु वास्तविकता मे भेद न होना चाहिये। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि निर्धन लोगों के साथ बिल्कुल मिल जुल जाऊं तथा उन का अनुसरण करूं। किन्तु मुझे प्रतीत हुवा कि ऐसा करना उन बातों की, जिन्हें मैंने पवित्र समझ रक्खा है, हंसी उड़ाना है। इस समय पर आधुनिक रूसी पादरियों के मज़हब ने मेरी सहायता की।

इन महानुभावों के विचारानुसार सब से प्रथम सिद्धान्त यह है कि चर्च (धर्म) सच्चाई की जड़ है। इस का प्रत्यक्ष परिणाम यह निकलता है कि धर्म जो कुछ कहता है वह ठीक

है। अतएव चर्च, जिसको दूसरे शब्दों में विश्वास रखने वालों की संस्था कहा जा सकता है, मेरे ईमान (विश्वास) का प्रथम सिद्धान्त ठहरता है। मैं युक्ति देता था कि जो सच्चाई ईश्वर में है उस को कोई एक पृथक व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। वह सच्चाई, उन सब मनुष्यों के समाज को जो प्रेम-बन्धन में बंधे हों प्राप्त हो सकती है। अतएव सच्चाई पाने के लिये हम को वे सब बातें दूर कर देनी चाहियें जो भेद डालती हैं तथा हमें उन बातों को सहन करना चाहिये जो हम को अरुचिकर हों। सत्य प्रेम द्वारा ही प्रगट होता है। अतएव यदि हम 'चर्च' के आदेशों का पालन न करेंगे तो प्रेम जाता रहेगा तथा सत्य लुप्त हो जायगा।

जो बारीकी इस युक्ति में थी, वह उस समय मेरी समझ में न आई। उस समय मेरी समझ में न आया कि प्रेम बढ़ते २ पूर्णता की सीमा तक पहुंच सकता है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि किसी पन्थ के लोगों को किसी अन्य पन्थ के विश्वासों को मानने पर विवश किया जाय। मैंने उस समय पुराने चर्च के सब सिद्धांत—यद्यपि उन में से बहुत से मेरी समझ में न आये—मान लिये। मैंने वाद विवाद तथा खण्डन मण्डन से बचने का प्रयत्न किया और जहां२ मुझे अड़चन मालूम दी मैंने अपनी बुद्धि की सहायता से उसका मन समझौता कर लिया।

पुराने चर्च के सिद्धान्तों पर विश्वास ला कर मैं ने पुरानी कथाओं पर भी चलना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार मैं अपने पूर्वजों तथा माता पिता के धर्म में सम्मिलित हो गया। इस में कोई बुरी बात भी नहीं मालूम हुई, क्योंकि मेरे विचार में केवल विषय वासनाओं के आधीन होना बुरा काम है। जब मैं प्रातः काल अपने धार्मिक कृत्यों के करने के लिए उठा करता था तो मुझे मालूम होता था कि जो कुछ मैं कर रहा हूं—चाहे अपने पूर्वजों की आत्मा को प्रसन्न करने के लिए चाहे जीवन-समस्या

को समझने के लिये—अच्छा कर रहा हूं। इस काम के कारण मैंने अपने व्यक्तिगत सुख को नमस्कार कर लिया था। जिस समय मैं प्रार्थना करने के लिये ज़मीन पर झुकता था या व्रत आदि रखता था तो भी मेरी ऐसी ही दशा होती थी। मेरा इन्द्रिय-निग्रह चाहे कितनी ही निम्न कोटि का क्यों न हो, किन्तु था अच्छे काम के लिये। मैं प्रार्थना के समय का सदैव ध्यान रखता था। जब मैं गिरजा में उपदेश सुनता था तो प्रत्येक शब्द पर खूब ध्यान देता था और अपनी बुद्धि के अनुसार उसका अर्थ समझने का प्रयत्न करता था। उपदेश मे इन शब्दों ने मुझ पर सब से अधिक प्रभाव डाला था:—

"हम सबको मिल कर उससे प्रेम करना चाहिये।"

इसके आगे का वाक्य—"पिता, पुत्र तथा पवित्र आत्मा मे विश्वास लाना चाहिये"—मैं छोड़ देता था क्योंकि मेरी समझ मे न आता था।

चौदहवां प्रकरण ।

मे

मेरे जीवित रहनेके लिए विश्वास की ऐसी आवश्यकता थी कि मैने जान बूझ कर उन विरोधों की ओर से जो मुझे मालूम होते थे, दृष्टि फेरली । किन्तु कतिपय वचन जो गिरजा में पढ़े जाते थे मेरी समझ में बिल्कुल न आते थे । प्रार्थना (Liturgy) की कुछ बातों के, मैं ने अपने समझाने के लिये, कुछ और ही अर्थ लगा रक्खे थे । उदाहरणतः—" सब से अधिक मानास्पद स्त्री, सब से अधिक पवित्र प्रभु की माता तथा सब सन्तों को याद रख के हम को अपना जीवन प्रभु ईशु के नाम पर न्यौछावर कर देना चाहिये "—का अर्थ मैंने कुछ और ही लगाया था । बादशाह तथा उस के वंश से सम्बन्ध रखने वालों के लिये बार २ प्रार्थनायें करने का कारण मैंने यह समझ लिया था कि बादशाह तथा उसके वंश वाले साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पापी हैं, अतएव उन के लिये प्रार्थना की भी

अधिक आवश्यकता है। किन्तु इस पर भी फ़रिश्तों के गीत, रोटी और शराब की तैयारी, तथा कुंवारी मेरी (Mary) की पूजा मेरी समझ में बिल्कुल न आई और मैंने अपने दिल में कहा कि उन में दूसरे तथा असत्य अर्थ पैदा करना ईश्वर को धोखा देना है।

यही दशा मेरी 'चर्च' की विशेष छुट्टियों के विषय में थी। मैं सातवें दिन की छुट्टी का अर्थ समझता था कि एक पूरा दिन ईश्वराधन में लगा देना चाहिये। किन्तु मालूम हुवा कि रविवार की छुट्टी क़यामत की यादगार में है जिस दिन मुर्दे ज़िन्दा होंगे। यह बात मेरी समझ में बिल्कुल न आई।

बहुत से कहते थे कि रविवार की छुट्टी 'प्रभु के भोजन' (Lord's Supper) की यादगार में है। यह बात बिल्कुल ही बुद्धि के विपरीत है। उसके अतिरिक्त 'क्रसमस' (बड़ा दिन) को बारह छुट्टियां और होती हैं जो 'मौजज़ों' (अद्भुत कार्यों) की यादगार में हैं। मैं ने उनकी ओर अधिक ज़ोर न दिया क्योंकि मुझे उनको भी छोड़ना पड़ता। इन सब छुट्टियों में एक छुट्टी पर बहुत ज़ोर दिया जाता था, जिसकी मुझे सबसे कम परवाह थी। अतएव या तो मैं ने अपने विचार के अनुसार उनके अर्थ लगाये या उनकी ओर से अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली।

जब मैं बहुत साधारण बातों—उदाहरणतः नाम रखने की रस्म आदि—पर लोगों को बहुत ज़ोर देते देखता था तो मेरी अशान्ति बढ़ जाती थी। यह बहुत सीधी सादी बात थी। मैं इसी असमञ्जस में रहता था कि मैं क्या करूं? मैं स्वयं झूठ में सम्मिलित होजाऊं या इन बातों को मानना छोड़ दूं?

बहुत दिनों बाद एक दिन गिरजा में जाकर मुझे जो कष्ट अनुभव हुआ उसको मैं कभी नहीं भूल सकता। उपदेश, प्रार्थना,